समता कथा माला पुष्पांक-*13*

देवता दोनों बार हारे

आचार्य श्री नानेश

izk'kd
श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
lerk Hkou] chdkusj jkt-

❖ **समता कथा माला पुष्पांक-*13***

❖ **देवतो दोनों बार हारे**

❖ **आचार्य श्री नानेश**

❖ **प्रथम संस्करण : अक्टूबर, *2012, 3100* प्रतियाँ**

❖ **मूल्य : *10/-***

❖ **अर्थ-सहयोगी :**
श्रीयुत उत्तमचंदजी-मनीषजी आदित्यजी गेलेड़ा
चैन्नेई

❖ **प्रकाशक :**
श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, आचार्य श्री नानेश मार्ग
श्री जैन पी.जी. कॉलेज के सामने, नोखा रोड़,
बीकानेर-334401(राज.)
फोन: *0151-2270261, 3292177, 0151-2270359 (Fax)*
visit us : www.shriabsjainsangh.com
e-mail : absjsbkn@yahoo.co.in

❖ आवरण सज्जा व मुद्रक :
तिलोक प्रिंटिंग प्रेस, बीकानेर
दूरभाष : *9314962475*

प्रकाशकीय

महिमा मण्डित स्व. आचार्य-प्रवर श्री नानालालजी म.सा. के रतलाम चातुर्मास में सन् 1988 में उन्हीं के सान्निध्य में जैन सिद्धांत विश्वकोष का लेखन कार्य प्रारम्भ हुआ। उसी के कथा खण्ड में अनेक कथाओं का भी संयोजन हुआ है। कुछ तकनीकी स्थितियों से उक्त कोष का प्रकाशन कार्य अब तक संभव नहीं हो पाया। कथा से आबाल वृद्ध को सात्विक प्रेरणा प्राप्त होती है। हर वर्ग उसे रूचि से पढ़ता है। इसलिए कोष में संयोजित कथाओं के प्रकाशन का निर्णय लिया गया। इस लेखन- सम्पादन में श्री शांतिलालजी मेहता कुम्भागढ़, चित्तौड़गढ़ के अथक परिश्रम को भी नहीं भुलाया जा सकता।

उपरोक्त पुस्तक समता कथा माला पुष्पांक-13 **देवता दोनों बार हारे** के रूप में आप सभी के समक्ष प्रस्तुत है।

इस पुस्तक के प्रकाशन में अर्थ सहयोगी के रूप में श्री उत्तमचंदजी-मनीषजी, आदित्यजी गेलेड़ा, चैन्नई ने जो सहयोग प्रदान किया है। उसके लिये संघ आपका आभारी है।

राजमल चौरड़िया
संयोजक - साहित्य प्रकाशन समिति
श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर

अनुक्रमणिका

संसार का मानचित्र	:	7
बेचारा लखपति गृहपति	:	18
नट के खेल दिखाते-दिखाते	:	34
छः कड़ियों का एक रिश्ता	:	47
जलधारा के मध्य केवलज्ञान	:	60
मेरे भी कोई स्वामी हैं?	:	72
ओ कायर भाई की बहिन!	:	85
देवता दोनों बार हारे	:	98
चर्मपट्ट से मुनि हत्या	:	110

।। जय गुरु नाना।। ।। जय महावीर।। ।। जय गुरु राम।।

परम श्रद्धेय

श्री रामलालाजी मसा.

के

चरणों में

कोटि-कोटि वन्दन

वन्दनकर्त्ता
उत्तमचन्दजी-मनीषजी,
आदित्यजी गेलेड़ा

संसार का मानचित्र

मेरे जीवन का अन्त निकट है मेरे पुत्र महेश्वर दत्त, किन्तु मैं मरना नहीं चाहता। मेरी अपनी कई इच्छाएँ बाकी हैं और अनेक चिन्ताएँ हैं कि मैं नहीं रहूंगा तो तेरा क्या होगा, सारे उल्टे-सीधे काम करके कमाए हुए धन का क्या होगा, मेरे घर का क्या होगा, मेरे पशुओं का क्या होगा? मेरे पुत्र, मैं मरना नहीं चाहता हूँ- भीषण दर्द से कराहते हुए शिवदत्त बड़बड़ा रहा था।

शिवदत्त का पुत्र महेश्वरदत्त सामने खड़ा हुआ था। अपने सारे जीवन में कुध्यान और कुकृत्य के सिवाय शिवदत्त ने कुछ भी नहीं किया था तो उसका पुत्र महेश्वरदत्त उससे दो कदम आगे ही था, पीछे नहीं। शुभ कार्यों के प्रति उसने कभी ध्यान नहीं दिया वह इतना श्रद्धाविहीन था कि दान, पुण्य आदि सुकृत्यों को व्यर्थ समझता था। समान वृत्ति-प्रवृत्ति होने के कारण वह अपने पिता के प्रति अवश्य ही कुछ झुका हुआ था,

अत: पिता के उक्त विलाप के उत्तर में वह बोला- पिताजी, आप किसी भी बात की चिन्ता न करें और जो भी आपको इच्छा हो बताएँ, मैं उसे अवश्य पूरी करूंगा।

पुत्र, यह संसार छोड़ने की मेरी तनिक भी इच्छा नहीं है, पर क्या करूं, मौत जो सामने खड़ी हो गई है। तुम इस धन की पूरी-पूरी रक्षा करना, उसे दान-पुण्य में गँवाना मत। हाँ, मेरी एक इच्छा है, तू उसे अवश्य पूरी करना।

अपनी वह इच्छा प्रकट कीजिए पिताजी, मैं उसे आपके कथनानुसार ही पूरी करूंगा।

देख पुत्र, जब मेरा पहला श्राद्ध आए तो उस दिन एक भैंसे (पाड़े) का अवश्य ही बलिदान करना और मृत्यु तिथि को पूरी धूमधाम से मनाना।

ऐसा ही करूंगा पिताजी। आप पूरी तरह निश्चिन्त रहें।

पुत्र ने वचन दिया और पिता के प्राण पखेरू उड़ गए।

कुछ दिनों बाद महेश्वरदत्त की माता भी रोगग्रस्त हुई और मृत्यु के समीप पहुँच गई। वह भी परिवार, पुत्र, धन आदि सबके लिए हाय-हाय करती हुई मरी। सबने यह महसूस किया कि शिवदत्त से भी अधिक उसकी

पत्नी की लालसा घर-संसार में अटकी हुई रही।

महेश्वरदत्त और उसकी पत्नी गांगिला तब संसार चलाने लगे। गांगिला अतीव सुन्दर थी किन्तु शालीनता का अभाव था। जैसा घर का वातावरण था और जैसी महेश्वरदत्त की वृत्तियाँ एवं प्रवृत्तियाँ थी, उनके बीच रहते हुए गांगिला के जीवन में सत्स्वभाव एवं सद् व्यवहार की आशा ही कैसे रखी जा सकती थी? उसके कदम दुराचार की ओर बढ़े हुए थे तथा येनकेन प्रकारेण वह अपनी वासनापूर्ति में लिप्त थी।

माता-पिता की मृत्यु के बाद व्यापार-परिवार आदि की सारी जिम्मेदारी महेश्वरदत्त के कंधों पर आ गई थी, अत: अधिकांश रूप से इधर-उधर के कामों में व्यस्त रहने लगा। कामकाज से अक्सर उसको बाहर गाँवों में भी आना-जाना पड़ता था। इस प्रकार गांगिला को अपनी वासनापूर्ति के अधिक अवसर मिलने लगे। किन्तु वह अपने पति के क्रोध से अधिक भयभीत रहती थी। इस कारण वह बहुत गुप्तरीति से ही अपने अनाचार में प्रवृत्ति करती थी।

पाप कितना ही छिपाया जाए, लेकिन वह प्रकट होकर ही रहता है, इस उक्ति के अनुसार एक बार महेश्वरदत्त दो-तीन दिन के लिए बाहर गाँव गया हुआ

था, अतः गांगिला बेफिक्र हो गई थी। उसने अपने प्रेमी को घर पर ही बुला लिया तथा उसके साथ दुराचार का सेवन करने लगी। बाहर गाँव में काम नहीं होने से उधर महेश्वरदत्त जल्दी ही घर लौट आया। जिस समय उसने घर का द्वार खटखटाया, उस समय गांगिला अपने प्रेमी के साथ चिन्तामुक्त होकर भोग-भोग रही थी। द्वार पर खटखटाहट सुनते ही उसके प्राण ताल में आ गए। प्रेमी को इधर-उधर छिपाना चाहा, किन्तु हड़बड़ाहट में वह कुछ नहीं कर सकी और तुरन्त द्वार खोल बैठी।

भीतर का दृश्य देखते ही महेश्वरदत्त आग बबूला हो गया- उसकी पत्नी की यह हिम्मत कि घर में रहकर भी व्यभिचार करे और यह जार इतना बेफिक्र होकर उसके घर में घुस आया। उसका क्रोध सीमा पार कर गया।। उसने अपनी तलवार निकाली और जार पुरुष का सिर तत्काल धड़ से अलग कर दिया।

मौत के भय से गांगिला थर-थर कांपने लगी, वह पति के पाँवों में गिरकर सौगन्ध खाने लगी- मुझे क्षमा कर दो, मैं अब अपने सारे जीवन में कभी भी ऐसी भूल नहीं करूंगी। मुझे जीवन दान दे दो।

महेश्वरदत्त ने कुछ पत्नी की सौगंध का लिहाज किया और कुछ अपनी प्रतिष्ठा का खयाल, उसने अपनी

पत्नी को कठोर चेतावनी देकर छोड़ दिया।

फिर उसकी गृहस्थी सुखपूर्वक चलने लगी, किन्तु उसकी जीवन की दिशा में किंचित् मात्र भी परिवर्तन नहीं आया।

पिता को मरे एक वर्ष का समय व्यतीत हो गया और उसके श्राद्ध का दिन आ गया। पिता की अन्तिम इच्छा के अनुसार महेश्वरदत्त ने श्राद्ध की जोरदार तैयारियाँ की। जब बलिदान के लिए भैंसा खरीदने की बात चली तो उसकी पत्नी ने सुझाव दिया- भैंसा बाहर से खरीद कर लाने की क्या जरूरत है? अपने घर में ही अपनी भैंस का जन्मा भैंसा काफी बड़ा हो गया है, कुछ काम का भी नहीं है, व्यर्थ घास चरता है, सो उसका ही बलिदान क्यों न कर दो? यह सुझाव महेश्वरदत्त को पसन्द आ गया और उसी भैंसे के बलिदान का निश्चय कर लिया। आखिर पिताजी भी तो कहकर मरे थे कि धन को व्यर्थ गँवाना मत, तो भैंसे का मूल्यधन बच ही जाएगा।

यथासमय श्राद्ध का काम पूरा हुआ और महेश्वरदत्त ने तलवार के एक ही झटके में पिताजी के नाम पर अपने भैंसे का बलिदान कर दिया। भीषण छटपटाहट के साथ भैंसे के प्राण निकले। पिता का

प्रसाद मानकर सबने मिल बांटकर भैंसे के माँस का भक्षण किया।

भोज के समय एक और पशु का बलिदान हो गया। वह थी एक कुतिया। लोगों को जिमाने के समय सामान लाने में महेश्वरदत्त को बार-बार इधर-उधर जाना पड़ रहा था और वह कुतिया बार-बार बीच में आ जाती थी। इस कारण वह उस कुतिया से चिढ़ ही रहा था कि तभी उसने एक पत्तल में मुँह डाल दिया। महेश्वरदत्त ने क्रुद्ध होकर इतने जोर से उस पर डंडा जमा दिया कि तड़प-तड़प कर बेचारी कुतिया के प्राण ही निकल गए। टांग से उसको घसीटकर महेश्वरदत्त ने मरी कुतिया बाहर फैंक दी।

श्राद्ध से ठीक पहले महेश्वरदत्त के घर में एक और घटना भी घटित हो गई थी। उसकी पत्नी गांगिला ने अपने पहले पुत्र को जन्म दिया था। प्रथम सन्तान होने से वह पुत्र महेश्वरदत्त को विशेष रूप से प्रिय था। वह उसे अक्सर अपने कंधों पर बिठाता, गोद में खिलाता, उठाकर बाहर घुमाता और भांति-भांति से उसके प्रति अपने बेहद प्यार को जताता। गांगिला उसके पुत्र प्रेम को बड़े आश्चर्य के साथ निहारा करती।

श्राद्ध कार्य सम्पन्न होने पर जब महेश्वरदत्त

बलिदान किए गए भैंसे की हड्डियाँ वगैरह और मरी हुई कुतिया को नगर से बाहर फिंकवा देने के लिए उठवा रहा था, तभी उधर से घट-घट की बात जानने वाले एक परम ज्ञानी योगीराज निकले। वह दृश्य देखकर उनके मुख से अनयास ही निकल पड़ा- अहो, अकज्जं, अकज्जं।

चौंक पड़ा महेश्वरदत्त- मेरी ओर देखकर योगीराज ने 'अकार्य-अकार्य' अर्थात्- अनर्थ-अनर्थ ऐसे शब्दों का उच्चारण क्यों किया? अवश्य ही इन शब्दों का कोई विशिष्ट अर्थ है जिनका सीधा सम्बन्ध दिखाई देता है। वह भीतर ही भीतर कांप उठा- उसका हृदय हिल उठा किसी अजानी आशंका से।

सारा काम छोड़कर महेश्वरदत्त तत्काल योगीराज के सामने जाकर खड़ा हो गया। उसने उनके चरणों में प्रणाम किया और हठपूर्वक निवेदन करने लगा- आपके इस 'अकज्जं' शब्द को सुनकर मैं भीतर बाहर से कांप उठा हूँ, कृपा करके यह बतलावें कि क्या इस शब्द का सम्बन्ध मेरे किसी कृत्य से तो नहीं है? मैं आज अपने जीवन में पहली बार किसी सन्त के सामने झुका हूँ, मुझे निराश न करें।

सुनना ही चाहता है तो सुन भद्र, यह अकज्जं

(अकार्य) तूने ही किया है और यह अकार्य अनर्थ है। इसे यदि तू जान लेगा तो तुझे भली-भांति समझ में आ जाएगा कि जिस संसार के प्रति तेरी घोर लालसा है, उसका सही मानचित्र कैसा है? योगीराज ने सत्य के उद्‌घाटन की भूमिका बांधी।

तो सुन, यह श्राद्ध करके तूने बड़ा अकार्य और अनर्थ किया है। जिस भैंसे की तूने अपने पिता के नाम पर जो बलि चढ़ाई है, जानता है कि वह भैंसा कौन था अपने पूर्वभव में?

नहीं योगीराज, किसी पशु के पूर्व भव की बात मैं कैसे जानूंगा?

वह भैंसा अपने पूर्वभव में तुम्हारा पिता शिवदत्त था। मरते-मरते ही उसका संसार के प्रति इतना कुध्यान रहा और जी घर ही घर में उलझा रहा कि वह मरकर पुनः इस घर की भैंस के ही गर्भ में आ गया। तुमने उसी भैंसे का आज बलिदान किया है।

क्या कह रहे हैं, योगीराज? मैंने अपने पिता का श्राद्ध क्या उनका ही जीवनान्त करके किया है? पिता का श्राद्ध पिता के प्राणों से- यह तो वास्तव में अनर्थ ही हुआ है। ऐसा क्यों हुआ?

तुम्हारे पिता की और स्वयं तुम्हारी घोर सांसारिकता

के कारण। जो भी अपनी वृत्तियों तथा प्रवृत्तियों को इस संसार की रागद्वेष रूपी दलदल में फँसाए रखता है, उसकी आत्मा की ऐसी ही दुर्दशा होती है और यहीं पर तुम्हारे अनर्थ का अन्त नहीं है.....

और भी कोई अनर्थ किया है मैंने?

तुमने आज ही एक कुतिया के भी तो प्राण लिए हैं?

उस कुतिया के घर भर में घूमने से मैं तंग आ गया था, इसी कारण उस पर मेरा क्रोध भड़क उठा और मैंने जोर से डंडे का प्रहार कर बैठा।

वही कुतिया पूर्वभव में तुम्हारी माँ थी।

तो यह दूसरा अनर्थ मेरे हाथ से हुआ। यह मेरे को क्या हो गया था, योगीराज?

यही तो संसार का मानचित्र है, लेकिन अभी तुम्हारा संसार इतना ही नहीं है- और भी अनर्थ उसमें हैं।

और भी अनर्थ हैं? मैं अब और नहीं सुन पाऊंगा- सोच-सोचकर मैं पागल ही हो जाऊंगा।

भद्र, तुम्हें याद होगा, तुमने एक व्यक्ति की हत्या की थी।

हाँ की थी, वह दुष्ट मेरी पत्नी के साथ दुराचार

कर रहा था, क्या मैं उसे अभयदान दे देता? इसे भी आप अनर्थ बता रहे हैं?

एक बात और पूछ लूं। तुम्हारे एक पुत्र भी तो है न? कैसा लगता है वह तुम्हें?

मेरा पुत्र योगीराज, वह मुझे अत्यधिक प्रिय है। मैं समझता हूँ कि वह न रहे तो मैं भी जीवित नहीं रह सकूंगा।

तो तुमने जिस दुराचारी व्यक्ति को क्रुद्ध होकर अपनी तलवार से क्रूर हत्या की थी, वही मरकर तुम्हारे इस पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ है।

क्या यह ऐसी बात है योगीराज? ऐसी-ऐसी विचित्रताएँ भरी हुई हैं इस संसार में? मैं तो किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गया हूँ।

अब तो समझ गए हो न, भली प्रकार से संसार के इस मानचित्र को। तुम पहले दुष्कृत्यों में संलग्न थे और अब किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गए हो ये तो अच्छी बात है क्योंकि किंकर्त्तव्य विमूढ़ता की सीढ़ी से ही तुम्हें किंकर्त्तव्य की सीढ़ी पर चढ़ना होगा, विमूढ़ता को त्यागकर- योगीराज ने पतित जीवन व्यतीत कर रहे उस महेश्वरदत्त को बलवती प्रेरणा दी।

महेश्वरदत्त विचार मग्न हो गया- पिता के माँस

का भक्षण, माता की ताड़ना पूर्ण हत्या और अपनी पत्नी के जार पुरुष के साथ ही अपने अपार स्नेह का प्रदर्शन कैसा है यह संसार? कर्मों की यह कहानी कितनी भीषण किन्तु कितनी हृदय द्रावक भी होती है? इस संसार में किन-किन आत्माओं के साथ कैसा-कैसा सम्बन्ध रहता है और उन्हीं के साथ पुनः कैसा-कैसा विचित्र सम्बन्ध बन जाता है? वह भाव विह्वल होकर सच्ची श्रद्धा से पहली बार योगीराज के चरणों में लौट गया और बोला- क्या मुझ जैसे घोर पापी का उद्धार भी संभव है?

उद्धार अपनी ही अन्तर्भावना की शुद्धता और उच्चता से होता है। तुम अपनी भावना को उत्कृष्ट बना लो तो कुछ भी असंभव नहीं- योगीराज के उपदेश पर महेश्वरदत्त ने दीक्षित हो जाने का निश्चय कर लिया।

स्त्रोत- आवश्यक निर्युक्ति, उत्तराध्ययन सूत्र।

सार- घृणा पाप से हो, पापी से कभी नहीं।

❖ ❖ ❖

बेचारा लखपति गृहपति

ओ लखपति गृहपति, दया करो मुझ अनाथ पर, मेरा इस संसार में कोई नहीं है। मैं सर्वथा निराश्रित हूँ। इस समय तीन दिन से भूखा हूँ, मेरे प्राण निकले जा रहे हैं। मेरी सहायता करें। ठंडा बासी जैसा भी हो, मुझे खाना दिलावें। धार-धार रोते हुए एक बालक याचना कर रहा था एक लखपति गृहपति की चौखट के सामने, लेकिन गृहपति का उस ओर कोई ध्यान नहीं था। वह तो अपने बही-चौपड़ों में ही व्यस्त दिखाई दे रहा था।

याचक बालक अत्यन्त अभागा था। जन्मा तो वह एक सम्पन्न कुलीन घराने में, परन्तु मूल नक्षत्र में उसके जन्म लेते ही उस के पिता चल बसे, फिर माता भी मर गई और सारा धन भी नष्ट हो गया। यहाँ तक कि उसकी सहायता करने को एकाध सम्बन्धी भी आगे नहीं आया। अभागा कहकर सभी उसे दुत्कार देते थे। इस तरह एक अनाथ भिखारी के रूप में वह किसी तरह जी रहा था।

रोटी का रूखा-सूखा टुकड़ा मांगते-मांगते उसका गला भर्रा गया, हिचकियाँ बंध गई और वह खड़ा-खड़ा कांपने लगा, लेकिन वह गृहपति बहरा-अन्धा बना बैठा रहा।

उसी समय संयोग से एक सिद्ध गुरु और शिष्य भिक्षा हेतु उस हवेली में प्रविष्ट हुए। बालक की करुणापूर्ण याचना जारी थी। उसकी दुर्दशा देखकर शिष्य से न रहा गया, वह अपने गुरु से पूछा बैठा-गुरुदेव, यह बालक कैसा असहाय है ? कितनी दीनता से याचना कर रहा है किन्तु गृहपति जैसे सुन ही नहीं रहा। इसका जीवन कैसे चलेगा ?

शिष्य, यह संसार है, कर्मों के लेखे-जोखे का हिंडोला। यह गृहपति अपने वैभव के मद में इसकी करुण पुकार आज नहीं सुन रहा है लेकिन भविष्य में यही बालक इसके सम्पूर्ण वैभव का स्वामी बनेगा-सिद्ध गुरु ने शिष्य के प्रश्न पर यह भविष्यवाणी कर दी।

याचना के शब्द न सुनने वाले गृहपति ने यह भविष्यवाणी सुनली और उसे सुनते ही वह मन में झल्ला उठा-यह भिखमंगा मेरी सम्पत्ति का स्वामी बनेगा, ऐसा हो ही नहीं सकता और हो भी तो मैं कतई होने नहीं दूंगा-इस भविष्यवाणी को झूठी साबित करके रहूंगा।

परन्तु उस गृहपति के मन में एक अज्ञात मय बैठ और बस गया- कौन जाने, भविष्यवाणी सच ही निकल आए- मैं कोई जोखिम क्यो उठाऊँ ? जड़ को आज ही काट डालूं तो यह पौधा कैसे बन सकगा कल का वृक्ष ? कुछ भी हो, इस बालक को आज ही मरवा डालना चाहिए। बेचारा लखपति गृहपति कैसे बनने दे एक भिखारी बालक को अपनी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी ?

कुटिल गृहपति ने बालक को कहा- बैठो बच्चे, मैं तुम्हारे लिये खाना लाता हूँ। मैं लौटकर आऊँ तब तक कहीं जाना मत। और वह पीछे के दरवाजे से वधिकों (कसाई) को बुलाने निकल गया। उसने वधिकों को कहा-इसी समय मेरे साथ चलो और मेरे द्वारा पर जो बालक बैठा हुआ है, उसे फुसला कर वन में ले जाओ और उसका वध कर डालो। मैं तुम्हें इसके लिए पाँच स्वर्ण मुद्राएँ दूंगा।

वधिक बोले- हमें वध करने में कोई आपत्ति नहीं है। हमारा तो काम ही वध करना है, किन्तु एक बालक का वध कराने से आपका क्या हित होगा ?

यह तुम्हारा विषय नहीं है। मैं उसका तुम्हें पूरा मूल्य दे रहा हूँ। बोलो, करोगे मेरा काम ?

ठीक है, चलिए, हम तैयार हैं।

दो वधिक गृहपति के साथ चले आए। वधिकों ने बनावटी प्रेम दिखला कर बालक को भोजन कराने का वादा किया और उसे वन में ले गए।

एक शिलाखण्ड पर बालक को बिठा कर वे अपनी छुरियाँ घिस कर तीखी बनाने लगे। बालक सशंकित हो उठा- रोटी के स्थान पर छुरियाँ क्यों? वह गिडगिड़ाता हुआ बोला- आप तो मुझे भोजन कराने के लिए लाए हैं, फिर यह क्या कर रहे हैं ?

अरे मूर्ख, तू तो मरने के लिए तैयार हो जा। यहाँ रोटी कहाँ है ? वधिकों ने जोर का ठहाका लगाते हुए कहा।

बालक बोलते हुए जोरों से रो पड़ा- मैंने आपका या किसी का क्या बिगाड़ा है ? मैं रोटी ही तो मांग रहा था, मत दो रोटी, लेकिन जान से क्यों मारते हो ? मेरा क्या अपराध है ? दया करके मुझे छोड़ दो।

उसकी रुलाई पर वधिकों का दिल भी हिल गया। सेठ को भी ऐसे अनाथ बालक को मरवा डालने की क्या सूझी है ? वधिकों ने आपस में बात की और बालक को पूछा- हम तुझे एक शर्त पर छोड़ सकते हैं कि तू इस नगर से कहीं दूर भाग जाएगा, वापिस इस नगर में कभी दिखाई नहीं देगा। क्या इसके लिए तू तैयार है?

मैं तैयार हूँ, मुझे छोड़ दीजिए।

वधिकों ने प्रमाण के लिए बालक की एक अंगुली काटी और उसे भाग जाने को कहा, बालक सिर पर पैर रखकर वहाँ से भाग गया।

कटी हुई अंगुली लेकर वधिक गृहपति के यहाँ पहुँचे। उन्होंने कहा- सेठ, हमने आपका काम पूरा कर दिया है। प्रमाण में यह उस बालक के हाथ की अंगुली है। हमारा पारिश्रमिक हमें दिला दीजिए।

गृहपति ने उन्हें पाँच स्वर्णमुद्राएँ देकर रवाना किया और बालक की मृत्यु पर संतोष और हर्ष मना लिया।

ठहरो बालक, कहाँ भागे जा रहे हो ? देखते नहीं, तुम्हारी अंगुली से खून बहे जा रहा है! गाँव के पटेल ने उसे पकड़ लिया था और स्नेह से उसका परिचय पूछने लगा था।

कृपा करके आप मुझे छोड़ दीजिए। मैं आपसे रोटी मांगने की याचना नहीं करूंगा। मुझे क्या मालूम कि रोटी मांगने पर लोग अनाथ बालक को छुरी से मरवाने लगते हैं। मुझे रोटी नहीं चाहिए, आप मुझे छोड़ दीजिए- बालक सिसक-सिसक कर रोता रहा।

बालक! घबरा मत, तू मेरे पुत्र के समान है। यहाँ

तुझे कोई मारने वाला नहीं है, तू तनिक भी चिन्ता न कर। लेकिन हाँ, पहले पेट भर कर खा पी ले- कह कर उस पटेल ने बालक को भरपेट खाना खिला कर शान्त किया। फिर अपने सामने उसे बिठाकर प्रेम से पूछने लगा- पुत्र, तेरा नाम क्या है ?

मेरा कोई नाम नहीं, पिताजी, मैं अनाथ हूँ- बालक ने उत्तर दिया।

जाने दो इस बात को। मैं तुम्हें पूरे स्नेह से अपने पास रखूँगा, क्या तुम मेरे पास रहना चाहोगे ?

बालक फिर जोर-जोर से रो पड़ा- कब महसूस किया था उसने स्नेह ? वे उसके स्नेह के आँसू थे, बोला- मैं अवश्य रहूंगा, लेकिन काम करके रहूंगा। आप मुझे स्नेह दे रहे हैं तो मैं आपकी भक्ति करके आपका हृदय जीतूंगा।

और बालक उस पटेल के यहाँ रहने लगा, लेकिन उसने अपनी सच्चाई, लगन और मेहनत से वास्तव में पटेल परिवार का दिल जीत लिया। घर में वह परिवार के सदस्य के समान ही प्यार पाने लगा। उस प्यार ने धीरे-धीरे उसे एक जिम्मेदार और साहसी युवक के रूप में बदल दिया। सुन्दर तो वह था ही, उसका रूप-स्वरूप आकर्षक और मनमोहक बन गया।

नगर के गृहपति और गाँव के उस पटेल के बीच लेन-देन चलता था, सो एक बार हिसाब-किताब करने के लिये वह गृहपति गाँव में उस पटेल के घर पर आया। आते ही उसे वह अनाम दिखाई दिया और उसकी कटी हुई अंगुली वाला हाथ भी, वह तुरन्त उसे पहिचान गया। उसके चेहरे पर उदासी छा गई- वधिकों ने उसे धोखा दिया, बालक को मारा नहीं और छोड़ दिया तथा इस तरह उसका खतरा आज भी जीवित है। उसका मन उचट गया और उसकी हैरानी बढ़ गई।

जब गृहपति और पटेल अपना हिसाब करने बैठे तो गृहपति का उसमें तनिक भी जी नहीं लगा। उसके मन में क्रूरता जाग रही थी कि अपने इस कांटे का खात्मा कैसे किया जाए ? इसको मारने का जब तक पक्का प्रबन्ध नहीं हो जाएगा, तब तक उसे चैन नहीं पड़ेगा। प्रकट में उसने पटेल से बहाना बनाया-पटेलजी, मैं खास बही तो घर पर ही भूल आया हूँ। उसके बिना तो काम चलेगा नहीं। क्या वह बही नगर में मंगवाने का आप कोई प्रबन्ध कर सकेंगे ?

हाँ, क्यों नहीं ? मेरे पुत्र जैसा ही मेरे यहाँ एक लड़का है- बहुत जिम्मेदार है, आपकी बही लेकर आ जाएगा, तब तक आप यहीं विश्राम करें- कहकर पटेल

ने स्नेह से पुकारा- अरे भाई अनाम, जरा इधर तो आओ।

कहिए पिताजी ?

क्या तुम पास के नगर में जाकर इन सेठजी के घर से एक बही ला सकते हो ? ये तुम्हें इसके लिए पत्र लिखकर दे देंगे।

आप आज्ञा दें और मैं न जाऊँ, यह भी कभी हो सकता है क्या ?

बीच में ही पक्की पड़ताल करने के लिए गृहपति ने पूछा लिया- यह युवक कहाँ से आया है आपके पास ?

यह तो मुझे मालूम नहीं कि कहाँ से आया, लेकिन कई वर्षों पहले आया तब बड़ा दु:खी था। किसी ने इसकी अंगुली काट दी थी सो हाथ से खून बह रहा था। बड़ा आतंकित था उस समय, कह रहा था- लोग रोटी मांगने पर मरवा डालते हैं- पटेल ने उस युवक का अपना जाना परिचय दिया। गृहपति को उसके वही होने का पूरा विश्वास हो गया।

गृहपति ने अपने पुत्र धनदेव के नाम पत्र लिखा- पुत्र धनदेव, उस युवक को घर पर आते ही गुप्त रूप से विष दे देना। किसी व्यक्ति को कुछ भी मालूम न होने पाए और अपने हस्ताक्षर कर दिए।

पत्र युवक को दे दिया गया। वह युवक मनमोहक रूप-स्वरूप वाला विचारवान तो था किन्तु निपट अनपढ़ था-काला अक्षर भैंस बराबर। पत्र में क्या लिखा है, यह वह न तो पढ़ सकता था और न ही उसने किसी से पढ़ाना ही चाहा। उसे तो पटेल का काम करना, बस। पत्र को उसने अपनी पगड़ी के छोर में लपेटा और लठ्ठ लेकर प्रस्थान कर दिया।

बसन्तपुर नगर तक पहुँचा तो वह काफी थक गया था और चूंकि दोपहर का सूरज भी तप रहा था, वह बाहर के एक उद्यान में एक वृक्ष के नीचे सो गया। उसकी आँख लग गई। नींद में सिर के इधर-उधर होने से पगड़ी में लपेटा पत्र बाहर निकलकर भूमि पर गिर गया।

इस गृहपति के दो सन्तान थी एक पुत्र धनदेव और दूसरी पुत्री विषा। उस दिन विषा अपनी सहेलियों के साथ उस उद्यान में भ्रमणार्थ आई हुई थी। एक वृक्ष के नीचे एक अजनबी को सोया हुआ देखकर उसे यह जानने की उत्कंठा जागी कि वह कौन है ?

पास जाने पर विषा की दृष्टि सोये हुए पुरुष से भी पहले गिरे हुए पत्र पर पड़ी। उस पत्र की परत खुली हुई थी और वह तुरन्त पहचान गई कि यह उसके पिता

के हाथ की ही लिखावट है। पत्र लेकर उसने पढ़ा और पिता की जल्दबाजी में गलत लिखावट पर वह हँस पड़ी- वे विष लिखते समय उस पर आ की मात्रा ही लगाना भूल गये। पिताजी भी कितने कंजूस हैं- अपना बेटी का ब्याह अपनी अनुपस्थिति में करवाकर विवाह व्यय भी बचा लेना चाहते हैं।

यह सोचते-सोचते ही विषा की दृष्टि सोये हुए युवक पर गिरी। वह अपने पिता की पसन्द पर प्रसन्न हो उठी-जीवन साथी के रूप में उन्होंने उसके लिये ऐसे मनमोहक युवक का चुनाव किया है। वह खुशी से नाचने लगी, लेकिन पत्र की भूल को सुधारना न भूली। एक तीली पर अपनी आँख का काजल लगा कर विषा ने पत्र में लिखे शब्द विष से जोड़कर आ की मात्रा लगा दी- शब्द को विष से विषा बना दिया। फिर पत्र को तह करके पगड़ी के नीचे सरका दिया और अपनी सहेलियों के साथ नाचती फुदकती वह अपने घर को लौट गई।

युवक की आँख खुली तो वह घबरा गया कि उसे सोये बहुत समय निकल गया। उसने जल्दी-जल्दी पत्र सम्हाला, पगड़ी ठीक की और पूछते-पूछते गृहपति की हवेली पूर पहुँच गया। उसने पिता का पत्र पुत्र के हाथों में थमा दिया और उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा।

धनदेव ने पत्र पढ़ा और मन ही मन उसी तरह हँसा जिस तरह उसकी बहिन विषा हँसी थी अपने पिता की कृपणता पर। विषा भी वहीं थी और जान रही थी कि पत्र में क्या संदेश है, फिर भी भाई से बोली- कैसा पत्र है भैया? किसका है?

पिताजी का है। क्या लिखा है, सुनना चाहोगी ? धनदेव ने विनोद किया। बताओ, क्या लिखा है ?

लिखा है, उसके पति को भेज रहा हूँ, विषा को उसे सौंप देना।

चलो हटो-लजाती हुई विषा वहाँ से भाग गई।

सारा कार्य अत्यन्त गुप्त नीति से करना था, अतः स्वयं उसी ने आए हुए युवक को स्नान कराने से लेकर दूल्हे के रूप में सजाने का काम किया, दुल्हन को तैयार कराया और चुपचाप अपने खास पण्डित को विवाह कराने के लिए बुलाया। विधिपूर्वक फेरे डाले गए तथा उस युवक का विषा के साथ विवाह उसी रात सम्पन्न करा दिया गया। पिताजी के आगमन तक अपने बहनोई व बहिन के सुख निवास की उसने सामने की हवेली में व्यवस्था करदी, ताकि यह तथ्य किसी को भी ज्ञात न हो सके। यही तो उसके पिता की आज्ञा थी।

गृहपति ने पटेल के यहाँ दो-तीन दिन बिताए

और उसे विश्वास हो गया कि उस युवक का काम तमाम कर दिया है, तभी तो वह लौट कर नहीं आया है। प्रत्यक्ष में उसने पटेल को धौंस दिखाते हुए कहा तुम्हारा वह अनाम अभी तक नहीं आया। यदि उसने कुछ भी गड़बड़ी की तो तुम उसके जवाबदार हो। इतना कहकर हुआ अधिक रूकना उसके लिए संभव नहीं ऐसा कह उसने पटेल से फिर कभी आने की बात कही और नगर को लौट गया। पटेल ने चिन्तातुरता के साथ भलामण दी कि वे जाते ही उस युवक को शीघ्र यहाँ भेज दें।

प्रसन्नता की लहरों पर तैरता हुआ गृहपति अपने नगर के बाहर तक पहुँचा कि अब तो सिद्ध पुरुष की भविष्यवाणी का झूठापन जरूर ही साफ हो गया होगा। नगर में घूसते ही वह पण्डित उसे मिल गया- सेठ को प्रसन्न देखकर वह समझ गया कि उसके काम से सेठ खुश हुए हैं, वह बोला-सेठ साहब, सारा काम चुपचाप आपने करा कर धन बचा लिया सो आप जानें, लेकिन मेरी दक्षिणा तो आपको देनी ही होगी।

कैसी दक्षिणा, पण्डित ? गृहपति के तेवर टेढ़े हो गए।

विषा बेटी का विवाह जो कराया है मैंने।

कैसा विवाह ? किसके साथ ?

अब बनते क्यों हैं सेठजी, आप ने ही तो पत्र लिखकर भेजा था कि पत्र लाने वाले युवक को विषा गुप्त नीति से दे देना- पण्डित ने जैसी थी वैसी बात कह दी।

गृहपति ने अपने करम पर हाथ दे मारा-वह क्या कराना चाह रहा था और यह क्या हो गया है ? उसका दिल जोर-जोर से धड़कने लगा। पण्डित को एक तरफ धक्का मार कर वह जल्दी-जल्दी घर पहुँचा, घुसते ही चिल्लाने लगा- धनदेव, ओ धनदेव!

धनदेव उपस्थित हो गया, उसे कड़क कर आदेश दिया- मेरा गाँव से भेजा हुआ पत्र लाओ। ध नदेव पत्र ले आया, पढ़कर गृहपति चौंक पड़ा- यह विष शब्द पर आ की मात्रा कैसे लगी ? बोला- इस पत्र में तुमने अपनी तरफ से क्या कुछ-लिखा है ? नहीं तो- कहा धनदेव और अपने पिता का मुँह विस्मय से देखने लगा। कहाँ है वह युवक ? सेठ फिर चिल्लाया।

पिताजी, अब युवक कहकर क्या पुकारते हैं? वे तो इस घर के जवाँईजी हैं। वे बहिन के साथ सामने वाली हवेली में विश्राम कर रहे होंगे। यह हवेली मैंने उन्हें सौंप दी है। अभी आएँ, तब मिल लीजिएगा। उनके विश्राम में बाधा डालना उचित नहीं है।

क्या उत्तर देता गृहपति अपने बेटे की इस बात का? जो भी उत्तर देगा, उससे उसकी प्रतिष्ठा ही घटेगी, इसलिए उसने सोचा- अब बोलने से कोई लाभ नहीं, लेकिन वह सिद्ध पुरुष की भविष्यवाणी को किसी भी दिशा में फलवती नहीं होने देगा, यह उसका अटल निश्चय है- चाहे उसके लिए अपनी बेटी को विधवा ही क्यों न बना देना पड़े। मन ही मन उसने कपट का ताना बाना बुनना शुरू किया और षड़यन्त्र रच डाला कि उस युवक के जीवन का अन्त कैसे कर दिया जाए?

जब वह युवक गृहपति से मिला तो उसने प्रसन्नता प्रकट करते हुए उसे अपना आशीर्वाद देने का बहाना किया और बताया जवाँईजी, हमारे कुल की रीति है कि विवाह के बाद आधी रात को अकेले जवाँई को नगर के बाहर वाले काली मन्दिर में जाकर काली देवी की पूजा करनी होती है, सो आप आज रात को जाकर यह रस्म जरूर पूरी कर लें।

अवश्य पूरी कर लूंगा, पिताजी-उस जवाँई बने युवक ने सरलतापूर्वक कहा और आधी-रात के पहले पूजा की थाली हाथ में लेकर काली मन्दिर के लिए घर से निकल पड़ा। मार्ग में उसे उसका साला धनदेव मिल गया। हँसते हुए पूछ बैठा- बहनोईजी, आधी रात में

कहाँ की पूजा करने के लिए जा रहे हैं और वह भी अकेले ?

आपके पिताजी ने ही कुल की रस्म बताई है कि जंवाई को अकेले जाकर आधीरात में कालीदेवी की पूजा करनी चाहिए, इसीलिए जा रहा हूँ- अनाम ने कहा।

पिताजी भी पूराने विचारों के हैं। आप आधीरात को कहाँ कष्ट करेंगे ? अगर टोटका ही पूरा करना है तो मुझे दीजिए यह थाली, आपकी तरफ से मैं ही जाकर पूरा कर आता हूँ- कहकर पूजा की थाली धनदेव ने ले ली और अपने बहनोई को वापिस घर पर आराम करने के लिए भेज दिया।

पिताजी की इच्छा पूरी करनी थी सो धनदेव टोटका करने के लिए जल्दी-जल्दी काली मन्दिर की ओर बढ़ा। नगर के बाहर घुप्प अंधेरा था, लेकिन वह सारे रास्ते भली प्रकार जानता था। मन्दिर के प्रवेश द्वार तक वह आसानी से पहुँच गया।

नियुक्त वधिकों ने ज्यों ही किसी की पदचाप सुनी, वे नंगी तलवारें लेकर सतर्क हो गए- सेठ ने इस वध के लिए पांच सौ स्वर्णमुद्राएँ देनी ठहराई थी। अंधेरे में सिर्फ मानव आकृति ही उन्हें दिखाई दी। पहचान वे कर नहीं सके और पहचान उन्हें करनी भी नहीं थी। सेठ

ने कहा था कि आधीरात को मन्दिर में प्रवेश करने वाले का वध करना है, जिसके हाथ में पूजा की थाली हो। तलवारें चमक कर घूम गई और धनदेव का शरीर तड़पकर भूमि पर लेट गया। वे वधिक अपना काम करके तुरन्त भाग निकले।

प्रात:काल गृहपति अपने जँवाई को प्रणाम करने आता हुआ देखकर भयंकर रूप से चौंक उठा-भीषण आशंका ने उसे बुरी तरह से झकझोर दिया। तभी एक सेवक भागता हुआ आया, उसने संदेश दिया-काली मन्दिर में धनदेव का शव लहू से सना हुआ पड़ा है। गृहपति ने सुना और वह भी मौत का धक्का खा बैठा।

कहाँ बेचारा बनना चाहिए था अनाम बालक और कहाँ बेचारा बन गया लखपति गृहपति ? कर्मों के लेख को क्या कोई बदल सकता है ?

स्रोत : क्षमनखा चारित्र।

सार : अपनी सुदशा पर और अथ की दुर्दशा पर किसी को भी इतराना नहीं चाहिए।

❖ ❖ ❖

नट के खेल दिखाते-दिखाते

नट के खेल देखते-देखते इलापुत्र आँखें जाकर नट कन्या के चेहरे पर टिक गई। उसके गौरवर्ण, विशाल नेत्रों, तीखे नाक-नक्श और रूप सौन्दर्य में वे खो गई। खेल चलते रहे और इलापुत्र नट-कन्या के सौन्दर्य में डूबा रहा।

इलापुत्र नगरश्रेष्ठि धनदत्त का इकलौता पुत्र था। उसकी माता अपने विवाह के बाद अनेक वर्षों तक नि:सन्तान रह जाने का दारूण दु:ख भोगती रही- सन्तान को गोद में क्रीड़ाएँ कराने के सपने देखती रही। धनदत्त भी चिन्तित रहा कि आखिर उसकी विपुल सम्पत्ति का उत्तराधिकारी कौन होगा? दोनों पति पत्नी ने सैंकड़ों मनौतियाँ मनाई और तब भी निराशा ही हाथ लगी। अन्तत: पुण्योदय से पुत्र की प्राप्ति ढलती हुई आयु में हुई तथा उसका निमित्त उन्होंने कुलदेवी को माना। इसी कारण उन्होंने पुत्र का नामकरण किया- इलापुत्र।

यों इलापुत्र उनका पुत्र बना। उस पर उन्होंने अपने समस्त स्नेह की भरपूर वर्षा की। स्नेह की लोरियाँ सुनते-सुनते ही वह बड़ा होने लगा उसने अपनी प्रखर मेधा से अल्पसमय में ही अनेक विद्याएँ अर्जित कर लीं। अपने मधुर व्यवहार एवं शालीनता आदि गुणों से वह माता-पिता का ही नहीं जन-जन का चहेता बन गया। व्यवसाय के क्षेत्र में भी उसने अच्छी सफलता प्राप्त कर ली थी। माता-पिता उसकी व्यापारिक क्षमता से भी सन्तुष्ट थे।

एक रात वह इलापुत्र अपने कार्य से जा ही रहा था कि मार्ग में हो रहे नट मण्डली के सुन्दर अभिनय को देखने रुक गया। अभिनय इतना सजीव था कि इलापुत्र उसी में खो गया। नटमण्डली में एक रूपसी कन्या भुवनसुन्दरी भी थी जिसके पोर-पोर से लावण्य प्रस्फुटित हो रहा था। अभिनय से भी अधिक आकर्षण का केन्द्र वही भुवनसुन्दरी थी। उसी के सौन्दर्य का निर्विवाद रूप से इलापुत्र पान कर रहा था।

नाटक, नाटक ही होता है। उसे तो कुछ ही समय में, कुछ ही घण्टों में पूरा होना ही होता है। वह पूरा हो भी गया, पर इलापुत्र के मन का नाटक चालू हो गया। वह कुछ समय तो वहीं खड़ा रहा लेकिन वह

खड़ा आखिर कब तक रहता? नटमण्डली या यों कहें भुवनसुन्दरी के आँखों से ओझल होते ही उसने भी एक आह भरी और मन ही मन निश्चय कर लिया कि शादी करूंगा तो इसी नट कन्या से अन्यथा विवाह करना ही नहीं है।

उस चम्पानगर में कई दिनों तक नट के खेल चलते रहे और चलता रहा इलापुत्र एवं भुवनसुन्दरी के प्रेम का खेल। लेकिन इस खेल में दिन-दिन दुबला होता रहा इलापुत्र यह सोच-सोचकर कि कैसे कहे अपने प्रतिष्ठावान माता-पिता से एक नटकन्या के साथ अपने विवाह के निश्चय की बात? वह बात छेड़ने की चेष्टा करता और उसकी हिम्मत जवाब दे जाती। वह जानता था कि बड़े-बड़े समृद्धि श्रेष्ठि अपनी सुन्दर सर्वगुण सम्पन्न कन्याएँ धनदत्त श्रेष्ठि के पुत्र को विवाह में देने के लिये आतुर हो रहे थे, वहाँ वह एक नटकन्या को पसन्द करता है- यह बात उसके मुँह पर आ आकर फिर-फिर रूक जाती थी। इसी चिन्ता में वह मन से उदास और तन से दुर्बल होता जाता था।

धनदत्त और उसकी पत्नी पुत्र की ऐसी दशा बारीकी से देख रहे थे और वे भी कारण जानने के लिये अधीर हो रहे थे कि आखिर उनके लाडले बेटे को

ऐसा क्या कष्ट है? एक दिन वे ही पूछ बैठे- अरे पुत्र! इन दिनों तुम प्रसन्न नहीं दिखाई देते, तुम्हें क्या कोई कष्ट है? हो तो हमें बताओ, हम उसे तत्काल दूर कर देंगे।

इस पर इलापुत्र को अपने मन की बात कहने का साहस हो ही गया- पूज्यवर, आपने ठीक ही पहचाना है, वास्तव में एक चिन्ता के कारण मैं गंभीर कष्ट में हूँ। किन्तु उसे सुनकर आप रुष्ट हो जाऐंगे और उसे कदापि मिटाना नहीं चाहेंगे।

पुत्र, ऐसा तुम कैसे कह सकते हो? हम तो मात्र तुम्हें प्रसन्न देखकर ही जीना चाहते हैं।

तो सुनिए नगर में अभी जो नट के खेल चल रहे हैं, उन नटों के साथ एक सुन्दर कन्या है, उस पर मैं मोहित हो गया हूँ और निश्चय कर बैठा हूँ कि विवाह करूंगा तो केवल उसी के साथ, अन्यथा विवाह ही नहीं करूंगा और न ही जीवन भर प्रसन्न ही रह सकूंगा।

माता-पिता ने सुना तो हतप्रभ रह गए। गंभीर चिन्ता की रेखाएँ उनके माथे पर उभर आई- उनकी प्रतिष्ठा को दाव पर लगाकर उनका यह पुत्र कैसी तुच्छ कामना कर रहा है? पिता समझाने के स्वर में बोला- हे पुत्र! ऐसा निश्चय करने के पूर्व क्या तुमने उसकी हीनता

के विषय में एक भी बार विचार नहीं किया? अपनी कुल प्रतिष्ठा का भी ध्यान नहीं रखा?

आप जो भी सोचें- मेरा हृदय नट कन्या के मोहपाश में बंध चुका है, वह टूटकर ही उससे विलग हो सकता है- कहकर इलापुत्र चुप हो गया।

भांति-भांति से उसे समझाने का माता-पिता ने प्रयत्न किया, किन्तु प्रभावहीन सिद्ध हुआ। जब कोई उपाय नहीं दिखाई दिया तो पिता ने नट कन्या के पिता से मिलकर कन्या का हाथ मांगने का ही निर्णय लिया- अतिशय पुत्र-स्नेह की विवशता जो थी।

अनिच्छापूर्वक भी धनदत्त अपने कुछ सेवकों के साथ नटों के डेरे पर गया और उसने नट नायक से भेंट की। उसने कहा- हे नट नायक! तुम्हारी पुत्री से मेरा पुत्र विवाह बंधन में बंधने को इच्छुक है। मैं इससे सहमत हो गया हूँ, मैं समझता हूँ, तुम्हें भी कोई आपत्ति नहीं होगी। विवाह व्यय के अतिरिक्त धनराशि की कोई मांग हो तो वह भी मैं पूरी कर दूंगा।

नट नायक स्वाभिमानी था, यह सुनकर ताव खा गया, बोला- सेठजी, मैं नट अवश्य हूँ, भिखारी नहीं। खेल दिखाकर धन लेता हूँ, भीख नहीं। मैं धन कमाना जानता हूँ, अतः भीख में धन देने की बात कहकर मेरा

अपमान न करें। यदि आपका पुत्र मेरी पुत्री के साथ विवाह करना ही चाहता है तो उसे मेरी एक शर्त पूरी करनी होगी।

क्या होगी तुम्हारी शर्त?

इसके लिए तुम्हारे पुत्र को भी नट बनना होगा। वह हमारे साथ रहे, नटकलाएँ सीखे और उनमें कुशल बने। फिर वह अपनी कुशलता का किसी कला पारखी राजा के हाथों अनुपम पुरस्कार प्राप्त करे तभी मैं अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ कर सकूंगा।

सेठ धनदत्त इस शर्त का कोई उत्तर नहीं दे सका और लौटकर घर पर आ गया। इस शर्त का उत्तर देने गया इलापुत्र और वह वापिस लौटकर अपने घर नहीं आया।

इलापुत्र नटों की टोली के साथ हो गया और शिष्य बनकर नट-कलाएँ सीखने लगा। मस्त हिरण की तरह धन के वनप्रदेश में विचरण करने वाला इलापुत्र कुछ इस तरह दिखाई देने लगा- टोली के साथ राह पर नंगे पैरों चलते हुए सबके आगे रहना, सिर पर लम्बे-लम्बे बांसों की मोटी भारी, कंधों पर लटका हुआ ढोल, और हाथों को घुमाते हुए पशुओं को हांकना। ऐसा हाल हो गया श्रेष्ठिपुत्र का, लेकिन मोह जाल में फँसे हुए मकड़े

की तरह वह स्वसंज्ञा से शून्य जैसा था। एक ही लगन उसे लगी थी कि नट कलाओं में सर्वाधिक कुशलता शीघ्रातिशीघ्र प्राप्त कर ले और वह उसे प्राप्त करने भी लगा। दर्शक अब उसके खेलों की ही सबसे अधिक सराहना करने लगे। नटों की टोली में इलापुत्र सर्वाधिक प्रवीण कहा जाने लगा।

नगर-नगर, गाँव-गाँव अपने अनोखे खेल दिखाती हुई नटों की वह टोली वेनातट नगर में पहुँची। नट नायक ने तब इलापुत्र को कहा- हे श्रेष्ठिपुत्र, अब मैं तुम्हें योग्यतम नट मान सकता हूँ। अब शर्त के इस भाग की तुम पूर्ति क्यों न कर लो कि यहाँ के राजा को अपनी नट कला दिखाकर प्रसन्न करो और उससे अनुपम पुरस्कार लो। तब मैं भी अपनी पुत्री का हाथ तुम्हारे साथ में देकर निश्चिन्त हो जाऊँ और इस चिन्ता से भी निश्चिन्त हो जाऊँ कि मेरी नट कलाओं की परम्परा को सदा तुम जीवित रख सकोगे। क्या विचार है तुम्हारा?

मैं तो इस दिन की प्रतीक्षा कितनी अधीरता से कर रहा हूँ- शायद इसका कुछ अनुमान तो आपको भी लगा ही होगा- इलापुत्र ने नम्रता से कहा।

जानता हूँ, तुम विवाह बंधन में बंध जाने को कितने अधीर हो? समझो, कि तुम्हारी वह अधीरता अब

समाप्त होने को है। मैं जाकर राजा से निवेदन करता हूँ कि हमारी कला कुशलता की परीक्षा के लिए वे सार्वजनिक आयोजन करें।

मैं अपनी कला का श्रेष्ठतम प्रदर्शन करूंगा, आप निश्चिन्त रहें।

नट नायक ने राजा से निवेदन किया- वह भी नट कलाओं में गहरी अभिरूचि रखता था और पारखी था, उसने नट नायक को आश्वस्त किया- मैं तुम्हारे इलापुत्र नट एवं अन्य नटों का कला-प्रदर्शन उत्साह के साथ देखूंगा और यदि वह सराहनीय हुआ तो उसे अवश्य पुरस्कृत करूंगा।

यथासमय-यथास्थान प्रदर्शन का आयोजन रखा गया। दर्शकों के रूप में राजा, रानी, राज्याधिकारी एवं गणमान्य पुरुषों के अतिरिक्त नगर निवासी खचाखच भरे हुए थे। नगर में इलापुत्र का नाम सब सुन चुके थे और अब उसके खेल देखने के लिए अति उत्सुक हो रहे थे।

एक मैदान के बीचोबीच एक ऊँचा व मोटा बांस गाड़ा हुआ था। उसे टिकाए रखने के लिए भिन्न-भिन्न दिशाओं से तिरछी रस्सियाँ बन्धी हुई थी। बांस के ऊपरी भाग पर एक कील थी उस पर रखी हुई थी एक सुपारी,

उसी पर से इलापुत्र को अपना अभिनय प्रस्तुत करना था।

वह देखते ही देखते बांस पर चढ़ गया। बांस की कील पर रखी सुपारी पर उसने नाभि को स्थापित किया व ढ़ोल पर थाप पड़ते ही द्रुतगति से चक्री की तरह घूमने लगा। उसके हाथ में नंगी तलवार व ढोल लिए वह अद्‌भुत कला दिखा रहा था। जनता वाह-वाह कर रही थी। पर राजा कुछ और ही सोच रहा था।

राजा भी इलापुत्र की यह अपूर्व कला देखकर स्तब्ध रह गया, किन्तु मुग्ध हो गया भुवनसुन्दरी का यौवन और रूप देखकर। सराहना-सराहना होती है पर मुग्धभाव की किसी से क्या तुलना? और राजा ने सराहना को व्यक्त करना अपने लिए हानिप्रद माना। उसे ज्ञात हो गया था कि उसकी सराहना और पुरस्कार के साथ ही यह भुवनसुन्दरी इलापुत्र की हो जाएगी, परन्तु भुवनसुन्दरी को तो अब वह स्वयं चाहने लगा था। वह तो इलापुत्र का प्रतिद्वन्द्वी बन चुका था फिर उसकी कला को चाहकर भी सराहना क्यों करे? इसलिए उसने दूसरी बार इलापुत्र को नृत्य करने के लिए आदेश दिया।

इस गुत्थी को इलापुत्र कैसे जानता? और इसे भुवनसुन्दरी भी नहीं जानती थी। यह गुत्थी तो लगी थी केवल राजा के मन में और इसीलिए उसने इलापुत्र को

कतई पुरस्कृत न करने और भुवनसुन्दरी को स्वयं हथिया लेने का निश्चय कर लिया। इलापुत्र के लिए तो भुवनसुन्दरी जीवन और प्राण थी और अपने जीवन व प्राण के लिए वह निज के प्राणों पर भी खेल सकता था। अपने प्रत्येक कला प्रदर्शन को वह राजा के कहने से एक बार नहीं। रात्रि के चार प्रहर में चार बार पुनः-पुनः श्रेष्ठतर प्रवीणता के साथ करने लगा ताकि कभी तो राजा के मुख से सराहना का शब्द फूटे और हाथों से पुरस्कार निकले। तभी तो वह अपने जीवन और प्राण को प्राप्त कर सकता था।

भुवनसुन्दरी के हाथों की थाप उसके ढोल पर अधिक लयात्मक और अधिक रागात्मक होकर लग रही थी तथा इलापुत्र अधिक कुशल और अधिक वेगवान होकर थिरक रहा था।

इसी समय इलापुत्र की दृष्टि दौड़ गई एक दूर की हवेली के भीतरी भाग में। सारा परिदृश्य एक दम स्पष्ट था। एक मुनिराज भिक्षा लेने के लिए भीतर पधारे थे और सारे परिवार जन श्रद्धापूर्वक उनकी अभ्यर्थना कर रहे थे। कुल वधुएँ हाथ जोड़कर यथोच्छित आहार बेहराने के लिए तत्पर थी। रूप का लोभी जो उस समय इलापुत्र बना हुआ था, उसकी दृष्टि उन ललनाओं के

लावण्यपूर्ण मुखड़ों पर अटक गई- ऐसा दिव्य सौन्दर्य जैसे स्वयं इन्द्राणियाँ खड़ी हों। उनके रूप के सामने यह भुवनसुन्दरी तो कहीं टिकती ही नहीं। और ऐसी इन्द्राणियों के समक्ष भिक्षा लेने के लिए खड़े हैं वे मुनिराज, किन्तु उनके नेत्र तो नीचे झुके हुए भूमि को ताक रहे हैं। कोई लोभ नहीं दिखाई देता इन नेत्रों को ऐसी रूपसियों के रूप को निहारने का। ऐसे रूपजयी हैं ये मुनिराज!

इलापुत्र की चिन्तन गति उसके पाँवों की गति से भी तीव्रतर बन गई- एक ये मुनिराज हैं, आत्म संयम के महान धनी और एक मैं हूँ निपट निर्लज्ज रूप लोभी! इन्हें रूपराशि प्राप्त है पर उसकी ओर देखने की भी इनकी इच्छा नहीं- लालसा नहीं और मैं अप्राप्त रूप को पाने के लिए श्रेष्ठिपुत्र से बदलकर नट हो गया हूँ, धिक्कार है मुझे और धिक्कार मेरी पतित और मोहित आत्मा को। मैंने एक पल के लिए भी नहीं सोचा कि मेरे लिए अकर्त्तव्य क्या है और कर्त्तव्य क्या- बस रूप मोह में पागल हो गया, माता के स्नेह को और स्वयं के आत्म-सम्मान को विस्मृत कर कितना निर्लज्ज बन गया मैं? क्या उस निर्लजता का अब कोई सार्थक प्रायश्चित भी हो सकेगा? क्या मेरी पापात्मा का कोई त्राण होगा? क्या मैं अब भी धर्म के मार्ग पर अग्रसर हो सकूंगा?

इलापुत्र चिन्तन की गूढ़ गहराइयों में प्रवेश कर गया- जो हुआ सो हो गया, उसको अपने प्रायश्चित से धो डालूंगा और अपने आन्तरिक स्वरूप को निर्मल बना लूंगा। ऐसा कभी नहीं हो साकता कि पतित से पतित आत्मा का भी उद्धार न हो- मैं लाख पतित सही, पर अब अपना उत्थान करके ही विराम लूंगा। बहुत हुई नट कला, अब आत्मसाधना की भूमिका पर उतर आऊंगा .....

भुवनसुन्दरी की थाप उसी मोहावेग से लग रही थी, लेकिन इलापुत्र के पाँव रुक गए थे। रुक क्या गए थे, सारा परिदृश्य ही परिवर्तित हो गया था। विचार श्रेणियों की परमोत्कृष्टता में इलापुत्र को केवल ज्ञान प्राप्त हो गया था, नट के खेल दिखाते-दिखाते ही देव दुंदुभी बज रही थी और जय-जय के स्वर समस्त वातावरण में गूंज रहे थे।

तब जाना केवली इलापुत्र ने कि राजा उसके नट के खेल देखता हुआ क्या सोच रहा था? क्यों उसकी कला की सराहना नहीं कर रहा था? वह भी तब उसी के समान भौतिकता के मोह जाल में बंध रहा था। केवली ने राजा को प्रतिबोध किया- घातक मोह की नींद से जगाया। महारानी यह रहस्य जानकर आश्चर्यान्वित रह गई कि एक से बढ़कर अनेक सुन्दरियों का स्वामी

मेरा पति यह राजा एक नट कन्या की सुन्दरता के आगे यों आहत और मोहित हो गया- वह भी संसार की इस विचित्रता पर गंभीर चिन्तन करने लगी। चिन्तन की अतल गहराई उसे भी प्राप्त हो गई और महारानी भी केवली बन गई।

प्रतिबोध का प्रकाश राजा को भी दिया, वह भी जागृत हुआ। अपनी मोहदशा पर पश्चाताप किया उसने और भावों की उच्चता के साथ उसने भी केवलज्ञान की प्राप्ति कर ली। यह दिव्य दृश्य देखकर जाग गया। भुवनसुन्दरी का अन्त:करण भी। मोह में कैसा रूप था इलापुत्र का और अब कैसा जगमगा रहा है, उनका मुखमंडल- सूर्य से भी अधिक तेजस्वी? इन्हीं के उत्थान मार्ग पर मैं भी क्यों न चल निकलूँ पूरी श्रद्धा और साधना के साथ? वह भी भावनाओं की महानता में चढ़ गई उसी उच्च शिखर पर जहाँ अभी-अभी तीनों आत्माएँ पहुँची थी।

स्त्रोत- आवश्यक निर्युक्ति

सार- भावों की उच्चता से धुल जाते हैं सारे पाप कर्म।

❖ ❖ ❖

छः कड़ियों का एक रिश्ता

संसार में जिन सम्बन्धों को पवित्र समझा जाता है, वे भी अनजाने में किस सीमा तक विकृत हो जाते हैं कि उनकी कल्पना करते हुए भी जुगुप्सा उत्पन्न हो जाती है। यह तो कभी-कभी इसी जन्म में दिखाई देता है, किन्तु जन्म-जन्मान्तरों की बातें कोई ज्ञानी पुरुष बताए तो इन रिश्तों की अनेकानेक विचित्रताएँ सामने आ जाती हैं। एक ही जन्म में जो कुछ कुबेरदत्ता ने भोगा और उसे साध्वी कुबेरदत्ता प्रकाश में लाई, वह विस्मयजनक तो है ही, किन्तु घृण्य भी कि एक ही रिश्ता छः कड़ियों वाला बन गया। इस रिश्ते पर ही विचार किया जाए तो सांसारिकता से राग भाव विलुप्त होने लगता है।

प्राचीनकाल में मथुरा नगरी में एक गणिका रहती थी। नाम था कुबेरसेना- रूप लावण्य में ऐसी अद्वितीय कि दूर-दूर से रूप लोभी भँवरे उस फूल के

चारों ओर मण्डराने आया करते थे। जैसा सुन्दर रूप वैसा ही मधुर कण्ठ-जो उसके पास पहुँचता, उसी का होकर रह जाता। उसकी आकर्षक देह यष्टि से स्वर्णमुद्राएँ झड़ती रहती थी- वह तो उसकी संरक्षिका के लिए कल्पवृक्ष के समान थी। संरक्षिका रात-दिन उसके सुस्वाथ्य की कामना और लालना किया करती थी कि वह उसके धनार्जन का सदा प्रवहमान स्रोत बनी रहे।

किन्तु एक दिन ऐसा अवसर आया जिससे उस संरक्षिका को यह आशंका हुई कि इस प्रवाह में विघ्न आने वाला है। हुआ यह कि कुबेरसेना अकस्मात् भीषण उदरपीड़ा से कराहने लगी। वैद्य बुलाए गए और उनसे जाँच के बाद पता चला कि गणिका के गर्भ ठहर गया है। प्रारंभ में ही इतनी पीड़ा है तो प्रसव के समय क्या दशा हो जाएगी? मुख्य बात तो यह कि प्रसव के बाद तो वह लोभी भँवरों के आकर्षण केन्द्र ही नहीं रह जाएगी। उसके ढीले पड़े अंगो-पांगों के साथ धनार्जन कहाँ से होगा?

कुबेरसेना को पहले प्यार-दुलार से और फिर क्रोध-कठोरता से उस संरक्षिका ने गर्भपात करा लेने का निर्देश दिया, किन्तु उस गणिका के मन की गहराई में कहाँ से आकर मातृत्व का संस्कार जाग उठा कि उसने

वह निर्देश दृढ़ता से अस्वीकार कर दिया। संघर्ष चलता रहा और गर्भकाल समाप्त हो जाने पर कुबेरसेना ने एक युग्म को जन्म दिया- एक पुत्र और दूसरी पुत्री।

जब मातृत्व के झौंकों में उस गणिका की देह यष्टि बिखरने लगी, तब तो उसकी संरक्षिका रौद्ररूप धर बैठी और निर्णय लेने का अवसर आ गया। कुबेरसेना घबरा उठी, मन मसोसकर उसने एक सुन्दर पेटिका तैयार करवाई, उसमें मखमली बिछौने लगवाए और दोनों पुत्र पुत्री को उसमें सावधानी से लिटाकर पेटिका गंगा नदी की तेज धारा में बहा दी। उसने अपनी दोनों सन्तानों को भाग्य भरोसे त्याग दिया- इतना अवश्य किया कि दोनों के अंगुलियों में एक-एक मुद्रिका दी और उस पर उनके नाम अंकित करा दिए- पुत्र की अंगुली पर नाम था कुबेरदत्त तथा पुत्री की अंगुली पर नाम अंकित कराया- कुबेरदत्ता।

कुबेरदत्त और कुबेरदत्ता को लेकर पेटिका बह चली गंगा की धारा में आगे से आगे।

मित्र, देखो तो गंगा की तेज धारा में कुछ चमकती सी वस्तु बह चली आ रही है- प्रातःकाल स्नान हेतु आए पटना नगर के एक नागरिक ने अपने दूसरे साथी से कहा।

हाँ, कोई सुन्दर पेटिका सी दिखाई देती है। अवश्य इसमें स्वर्ण, रत्न आदि बहुमूल्य वस्तुएँ होनी चाहिए। चलो, उसे बीच धारा से बाहर निकाल लाने की चेष्टा करते हैं।

दोनों नागरिक नदी में कूद पड़े तथा बड़ी कठिनाई के साथ उस पेटिका को बाहर निकाल कर लाए। खोलकर देखा तो दोनों आश्चर्य के साथ देखते ही रह गए- सुन्दर बालक और बालिका की आकर्षक जोड़ी। दोनों ने उसे धन ही समझा और जिसे पुत्र की चाह थी उसने बालक को ले लिया तथा दूसरे की पुत्री की चाह थी, वह बालिका को ग्रहण करके प्रसन्न हो उठा। दोनों उन्हें लेकर अपने-अपने घर चले गए। दोनों की पत्नियाँ भी वांछित धन पाकर हर्षित हो गई और अपनी सन्तान के समान ही उनका लालन-पालन करने लगी।

दोनों नागरिकों का परस्पर न कोई सम्बन्ध था और न ही कोई विशेष सम्पर्क। दिन, माह और वर्ष बीतते गए और दोनों करीब-करीब भूल ही गए कि दोनों ने साथ-साथ बालक और बालिका की प्राप्ति की थी। दोनों के घरों में दोनों सन्तानें बड़ी होती गई और यौवन

की चौखट पर चढ़ने लगी। दोनों के पिता तब उपयुक्त सम्बन्ध के लिए उधर-उधर घूमने लगे।

योग ऐसा बैठा कि दोनों को परस्पर अपने युवा पुत्र और पुत्री का सम्बन्ध कर देना पसन्द आ गया। इस प्रकार दोनों विवाह बंधन में बांध दिए गए। दोनों स्वाभाविक था कि विवाह के बाद पति-पत्नी के समान रहने और सुख भोगने लगे।

एक दिन फिर योग ऐसा बैठा कि दोनों पति-पत्नी अपने गवाक्ष मे बैठकर चौपड़ खेल रहे थे। तभी उन की दृष्टि पड़ी एक-दूसरे की अंगुठी पर। यह क्या? दोनों की एक-सी अंगुठी किस कारण से है ? अपनी-अपनी अंगूठियाँ दोनों के पास में शुरू से थी- यह वे जानते थे लेकिन दोनों की अंगुठियाँ एक-सी हैं- यह तथ्य उन्होंने उसी दिन जाना। अपने-अपने नाम भी उन्होंने अपनी-अपनी अंगूठी पर अंकित देखे- कुबेरदत्त और कुबेरदत्ता।

दोनों के मन-मानस में हलचल मच गई। दोनों ने अनुभव किया कि वे निश्चित रूप से सगे भाई बहिन ही होने चाहिए, फिर यह सब कैसे हो गया? दोनों के हृदय ग्लानि से भर उठे- भाई बहिन ही पति-पत्नी बना दिए गए, अकार्य हो गया। अब तो वह यह स्थिति

कदापि सहन नहीं कर पाएंगे। उन दोनों ने अपने-अपने पिताजी से भी उस रिश्ते की पुष्टि कर ली। दोनों उपेक्षित हो गए अपने उस घर-संसार से।

कुबेरदत्त ने लज्जावश पटना नगर ही त्याग दिया और चलते-चलते मथुरा पहुँच गया। वहीं पर वह बस गया। कुबेरदत्ता की उपेक्षा ने आत्मोद्धार का मार्ग चुना और वह साध्वी बन गई। संसार की ऐसी विचित्रता से उसे सच्चा वैराग्य हुआ था, अतः वह कठोरतापूर्वक संयम एवं तप की आराधना करने लगी।

कुबेरदत्त का यौवन वैराग्य की ओर नहीं झुक पाया- कामभोग में अटका रहा। जीवन संगिनी तो तब कोई थी नहीं, गणिका के यहाँ जाना ही उसे दिखाई दिया। उसका व्यापार अच्छा जम गया था और ठीक-ठीक धन भी कमाने लगा था, इस कारण अपने सुखोपभोग के लिए उसने ख्याति प्राप्त गणिका का ही चुनाव किया और वह थी विख्यात गणिका कुबेर सेना जो अपनी आयु के ढलान में भी रूप और आकर्षण की सुन्दर पेटिका बनी हुई थी। दोनों एक-दूसरे को भा गए और दोनों का एकल समागम चलने लगा। कालान्तर में दोनों से एक पुत्र जन्म हुआ। दोनों बड़े दुलार से उसे रमाते

थे। इस तथ्य से अनजान कि दोनों का आपस में पहले का रिश्ता क्या था।

ग्रामानुग्राम विहार करती हुई साध्वी कुबेरदत्ता योग से मथुरा में आ गई और योग से ही उसे कुबेरदत्त और कुबेरसेना के समागम तथा उससे प्राप्त पुत्र के तथ्यों की जानकारी हो गई। वहाँ उसे यह ज्ञात हो गया कि कुबेरदत्त और कुबेरदत्ता का युग्म इसी कुबेरसेना की कुक्षि से जन्मा था और गंगा नदी में जन्म के बाद बहा दिया गया था। सांसारिक सम्बन्धों की इस दूसरी विचित्रता पर उसकी ग्लानि बहुत बढ़ गई और उसने विचार किया कि साध्वी होने के नाते वह इनके भी आत्म-जागरण का सार्थक प्रयास करेगी। इस हेतु उसने अपनी योजना बना ली।

भद्रे, यदि तुम्हें कोई कष्ट और आपत्ति न हो तो हम साध्वियाँ कुछ दिनों के लिए तुम्हारे आवास में ठहरना चाहती हैं। आवास बहुत बड़ा है और किसी एक तरफ की कोठरी में हम ठहर जाएंगी। तुम्हारी अनुमति की अपेक्षा है- साध्वी कुबेरदत्ता ने गणिका कुबेरसेना से निवेदन किया।

कुबेरसेना उसे सुनकर चौंक पड़ी- हे महाभाग,

संभवत: आपको विदित नहीं कि यह एक गणिका का आवास है, जहाँ रसिक जन आते जाते रहते हैं- कामकेलियाँ करते रहते हैं। क्या ऐसे स्थान पर आप ठहरना पसन्द करेंगी ? राग और विराग तो एक-दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी होते हैं न ?

यह तुम्हारा विचार है। हम तो यह मानती हैं कि विराग राग से ही फूटता है। यदि राग न हो तो विराग कहाँ से जन्म लेगा ? हम इस भविष्य की अभिलाषा रखती हैं कि यहाँ भी राग से विराग का प्रस्फुटन हो। साध्वी ने सैद्धान्तिक विश्लेषण ही नहीं किया, अपितु एक शुभ संकेत भी दे दिया।

इस गहराई को तो मैं गणिका भला क्या समझूंगी? यदि यहाँ ठहरने का आपका निश्चय ही है तो मुझे उस हेतु आपको स्थान देने में कोई आपत्ति नहीं है।

कुबेर सेना ने स्थान दिया और कुबेरदत्ता वहाँ ठहर गई। एक किसी भी रहस्य से तब तक अनजान और दूसरी उसको उद्घाटित करने के लिए उत्सुक। साध्वी को उपयुक्त अवसर की तलाश थी।

और एक दिन उसने वह अवसर खोज ही लिया। कुबेरदत्त और कुबेर सेना का पुत्र झूले में सोया हुआ था- अचानक वह नींद से जाग उठा और जोर-जोर

से रोने लगा। जब उसे सम्हालने के लिए कोई नहीं आया तो कुबेरदत्ता उसे सुलाने के बहाने सम्बन्धों की विचित्रता बताने वाली एक लोरी गाने लगी।

– सोजा मुन्ने, तेरा और मेरा खून और रिश्ता एक है।

– तेरी और मेरी माता एक है। इस रिश्ते से तू मेरा सगा भाई है।1

– तू मेरे पति का पुत्र है इस रिश्ते से तू मेरा भी पुत्र हुआ।

– तू मेरे पति का छोटा भाई भी है सो मेरा देवर हो गया।

– तू मेरे भाई का पुत्र है तो मेरा भतीजा भी हो गया।

– तू मेरे पिता का छोटा भाई है। इस रिश्ते से मेरा काका हुआ।

– तू मेरी सौत का पुत्र है इसलिए मेरा भी पुत्र हुआ।

इस प्रकार छः कड़ियों का एक रिश्ता है।

फिर वह दूसरी लोरी गाने लगी, जिसका आशय उस बालक के पिता के साथ अपने छः रिश्ते बताने का था–

- तेरे पिता और मेरा जन्म एक माता के उदर से हुआ तो यह हुआ भाई का रिश्ता।।1

- तेरी माता के पति होने से तेरे पिता मेरे भी पिता हुए।

- तेरी दृष्टि से काका का पिता होने से तेरा पिता मेरा दादा हुआ।

-मेरे साथ विवाह होने से तेरा पिता मेरा पिता।

-मेरी सौत कुबेर सेना का पुत्र होने से तेरा पिता मेरा भी पुत्र हुआ।

-तेरी दृष्टि से देवर का पिता होने से तेरा पिता मेरा ससुर हुआ।

तीसरी लोरी में उसने बालक की माता कुबेर सेना के साथ भी अपने छः रिश्तों का वर्णन किया-

-तेरी माता ही मेरी माता है।

-तेरी दृष्टि से काका की माता होने से तेरी माता मेरी दादी हुई।

- तेरी पिता की दृष्टि से भाई की पत्नी होने के कारण तेरी माता मेरी भौजाई हुई।

- सौत के पुत्र की स्त्री होने से तेरी माता मेरी पुत्रवधू हुई।

–तेरी माता मेरे पति की माता होने से मेरी सासू हुई।

–पति की दूसरी स्त्री होने से तेरी माता मेरी सौत भी हुई।

तीनों लोरियों के माध्यम से अठारह रिश्तों का बखान करते हुए साध्वी कुबेरदत्ता बालक को समझाने लगी– हे मुन्ने, तुम शान्त हो जाओ। अनन्त दु:खों से भरे हुए इस संसार का वास्तविक रूप-स्वरूप ऐसा ही है। ऐसे ही संसार के महासागर में अज्ञानी जीव बेसुध बहते रहते हैं, किन्तु जो धर्म की पतवार पकड़ लेते हैं, वे इस संसार की असलियत को जान जाते हैं।

कुबेरदत्ता के कंठ स्वर को सबसे पहले पहिचाना कुबेरदत्त ने। उसने कुबेर सेना को कहा कि वह कुछ रहस्मय की बात बता रही है, चलकर पूछना चाहिए। दोनों नीचे उतर कर उसके पास आए। कुबरे सेना ने ही पूछा– हे साध्वीजी, मैंने आप को आपके निवेदन पर अपने यहाँ ठहराया है और आप हमारे पुत्र को इंगित करके इन सारे भ्रामक रिश्तों का बयान क्यों कर रही हैं? क्या यह हमारे जीवन पर झूठे लांछन लगाने जैसी बातें नहीं है?

भद्रे, लांछन की बातें हो सकती हैं, किन्तु ये बातें झूठी नहीं है। ये सारे रिश्ते सच हैं- प्रत्यक्ष है और उनकी साक्षी मैं स्वयं भी हूँ। कुबेरदत्ता के नाम का स्मरण तो तुम्हें होगा ही, वही कुबेरदत्ता मैं हूँ। अब तो तुम जान गई होगी कि मैं तुम्हारी कौन हूँ?

कुबेरसेना को चक्कर-सा आने लगा और वह कुछ भी बोल नहीं पाई, तब बोला कुबेरदत्त- कुबेरदत्ता, मैं ग्लानि से तुम्हें त्यागकर चला आया था, किन्तु तुम मेरा पीछा करते हुए यहाँ क्यों चली आई? यहाँ जो मैंने थोड़ा काम सुख प्राप्त करने की कोशिश की है, उसे भी तुम नष्ट कर देना चाहती हो?

यह तुमने गलत समझा है। एक नंगे तथ्य को जानकर तुम्हें और मुझे ग्लानि हुई थी किन्तु इस नंगे तथ्य को जानकर तुम्हें उससे भी कई गुनी अधिक ग्लानि होगी कि यह कुबेरसेना तुम्हारी और मेरी माता है। इस पापपूर्ण सम्बन्ध से तुम्हें जगाने के लिए मैं यहाँ आई हूँ और जागृति का माध्यम मैंने बनाया है इस निर्दोष बालक को? बोलो, अब क्या कहना चाहते हो?

कुबेरदत्त की जीभ भी तालू से सट गई। दोनों के सिर लटक गए। वे ऐसे खड़े थे जैसे जन्म-जन्म के

अपराधी हो। तब बोलने लगी साध्वी कुबेरदत्ता- हे देवानुप्रिय, यह संसार ऐसा ही है। इसमें माता, स्त्री, स्त्री माता, पिता पुत्र, पुत्र पिता आदि के अनेकानेक असंगत रिश्तों में जीव जन्म लेते रहते हैं। विचारणीय यही है कि इस संसार के राग को त्याग कर विराग के पथ पर आगे बढ़ा जाए। तब वे दोनों भी विराग के पथ पर आ गए।

स्त्रोत- उत्तराध्ययन सूत्र, आवश्यक निर्युक्ति

सार- सम्बन्धों की पवित्रता आत्मशुद्धि से रहती है।

❖ ❖ ❖

जलधारा के मध्य केवलज्ञान

प्रिय मित्र जयसिंह, मैं तुम्हारा अतीव ऋणी हूँ कि यहाँ मदुरा में मुझे तुम्हारा सहयोग एवं बन्धुत्व मिला। इसी कारण मुझे यही अनुभव होता है जैसे मैं अपनी जन्मस्थली मथुरा में ही रह रहा हूँ- भोजन करते हुए देवदत्त ने सन्तोषपूर्वक कहा।

देवदत्त मथुरा (उत्तर) का निवासी था और एक साहसी युवा व्यापारी। वह अपने व्यापार को देशाटन के माध्यम से दूर-दूर तक फैलाना चाहता था। इसी उद्देश्य से वह मथुरा (दक्षिण) में पहुँचा था तथा व्यापार की समुन्नत परिस्थितियों से प्रभावित होकर वहीं ठहर गया था।

मथुरा (दक्षिण) या मदुरा में रहते हुए उसकी स्थानीय व्यापारी जयसिंह से घनिष्ठ मित्रता हो गई थी। आज उसके निमंत्रण पर वह उसके आवास पर भोजन करने के लिए आया हुआ था।

मित्र देवदत्त, तुम भी एक गुणी युवक हो तथा तुम्हारा स्वभाव मुझे बहुत अच्छा लगा है। वस्तुतः मित्रता का मूल आधार स्वभाव-समता को ही कहा जा सकता है। जयसिंह ने देवदत्त के उद्‌गारों का समर्थन किया।

उस समय जयसिंह के पास उसकी युवा बहिन अन्निका भी बैठी हुई थी। वह कुमारिका थी और थी अपूर्व रूप-गुण से सम्पन्न। उसने सुस्वादु पकवान स्वयं बनाए थे और देवदत्त को भोजन भी वह बड़े प्रेम से करा रही थी।

देवदत्त भी गुणशील सुन्दर युवक था और अविवाहित, अतः भोजन के समय दोनों गूढ़ दृष्टि से एक दूसरे को देखते रहे तथा एक-दूसरे की पहचान करते रहे। संभवतः दोनों ने यह अनुभव किया वे एक-दूसरे के जीवनसाथी बनने के योग्य हैं। देवदत्त ने ही बात चलाई- मित्र जयसिंह, तुम्हारी बहिन तो विवाह के योग्य हो गई है, इसका कहीं विवाह निश्चित क्यों नहीं करते?

चिन्तित तो इसके लिये मैं हूँ, किन्तु मेरी एक विशेष परिस्थिति भी है- जयसिंह बोला।

वह विशेष परिस्थिति क्या है?

यह कि बहिन अन्निका मुझे अत्यधिक प्रिय है और यह मुझे छोड़ कर किसी अन्य घर में जाए, यह मुझे कदापि सहन नहीं होगा। इस कारण मैं एक ऐसे युवक की खोज में हूँ जो रूप-गुण सम्पन्न होने के सिवाय इस बात पर भी राजी को कि विवाह के बाद वह मेरे घर में मेरे साथ ही रहेगा।

मित्र, यदि कोई आपत्ति न हो तो मैं इस कार्य में तुम्हारी सहायता करुँ- देवदत्त ने अव्यक्त संकेत दिया।

देवदत्त के प्रस्ताव को जयसिंह ने मित्र सहयोग के रूप में ही लिया, अतः प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा- तुम्हारी राय में कोई उचित उपाय हो तो वह मुझे अवश्य बताओ।

मित्र, बात करने में मुझे अत्यन्त संकोच हो रहा है, क्योंकि ऐसी बात मेरे अभिभावकों को करनी चाहिए किन्तु यहाँ मैं अकेला ही हूँ। क्या तुम अपनी बहिन का विवाह मेरे साथ करना पसन्द करोगे? लेकिन हाँ, तुम्हारी शर्त बहुत कठोर है।

यदि बहिन पसन्द कर ले तो मुझे उसका तुम्हारे साथ विवाह करने में कोई आपत्ति नहीं है, अपितु प्रसन्नता ही है, पर शर्त के लिए तो मेरी विवशता है।

एक विवशता मेरी भी है मित्र, मेरे माता-पिता

अतिशय वृद्ध हैं और उन की सेवा में मुझे यहाँ से जाना ही होगा। तब जीवन भर तुम्हारे साथ रहकर विवाहित जीवन व्यतीत करने की तुम्हारी शर्त मैं कैसे पूरी कर पाऊंगा?

जयसिंह विचार में पड़ गया- बात देवदत्त की भी उचित थी। वह बहिन को लेकर भीतर के कक्ष में गया और विमर्श करके वापिस लौट कर बोला- मेरी शर्त में तुम्हारी विवशता को देखते हुए एक संशोधन करने के लिये मैं तैयार हूँ।

बताओ वह क्या है?

यह कि जब तक मेरी बहिन पुत्रवती नहीं होगी तब तक तो तुम्हें मेरे पास ठहरना ही होगा, उसके बाद भले ही अपने माता-पिता की सेवा में चले जाना।

मित्र, तुम्हारी यह बात मुझे स्वीकार है।

तो मैं भी अपनी बहिन का हाथ तुम्हारे हाथ में देने को तैयार हूँ।

तदन्तर मुहूर्त देखकर देवदत्त एवं अन्निका का विवाह सम्पन्न करवा दिया गया और विवाहित युगल जयसिंह के साथ आनन्दपूर्वक रहने लगा।

मुझे देवदत्त से मिलना है। मैं उनके लिए एक आवश्यक सन्देश लेकर मथुरा से आया हूँ- सन्देशवाहक ने जयसिंह से कहा।

जयसिंह उसे देवदत्त के पास ले गया। अन्निका भी वहीं बैठी हुई थी। उस सन्देशवाहक ने पत्र निकाल कर देवदत्त को थमा दिया। देवदत्त ने उसे पढ़ा तो उसका हृदय द्रवित हो उठा तथा उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। अन्निका ने यह देखा तो वह विस्मित रह गई कि कभी अवसादग्रस्त भी न होने वाला उसका पति यों बरबस आँसू कैसे बहा रहा है? उसने स्नेह से पति के कन्धे पर हाथ रखते हुए पूछा- कहाँ का पत्र है और इसमें ऐसा क्या लिखा है जिससे इस तरह आपका दिल भर आया है?

प्रिये, पत्र पिताश्री का है, मथुरा से आया है। लिखा है- अतिशय वृद्धावस्था से उन दोनों के शरीर जीर्ण-शीर्ण हो गए हैं और वे कुछ दिनों के ही मेहमान हैं। वे मृत्यु से पहले अपने पुत्र से गले मिलने के लिए उत्कंठित हैं ताकि अपनी साध पूरी करके शान्तिपूर्वक मर सकें।

वास्तव में यह कठिन वेला है। इस अवस्था में माता-पिता से मिलना- उनकी यथोचित सेवा करना पुत्र का आवश्यक कर्त्तव्य भी है- अन्निका बोली।

किन्तु मित्र जयसिंह से मैं इस हेतु जाने की बात भी कैसे कर सकता हूँ? मैं वचनबद्ध जो हूँ। अभी तक

तुम पुत्रवती नहीं हुई हो- देवदत्त के स्वर में अथाह विवशताजन्य करुणा भरी हुई थी।

जयसिंह का हृदय भी विगलित हो गया, कहने लगा- बहिन का मुझसे अलग होना मैं सरलता से सह नहीं पाऊंगा किन्तु तुम्हारी परिस्थिति भी ऐसी है जिसमें अन्यथा बात करना कतई उचित नहीं। बहिन गर्भवती तो है ही, मैं समझ लूंगा कि मेरी शर्त पूरी हो गई है।

सच मेरे मित्र- कहा देवदत्त ने और गले मिला जयसिंह से। उसका कण्ठ रुंध आया और कृतज्ञता के आँसू बह चले। जयसिंह ने उन दोनों के प्रस्थान की सभी तैयारियाँ पूरी की तथा उन्हें मथुरा के लिए विदा कर दिया दु:ख भरे दिल से।

अन्निका आसन्नप्रसवा थी, अत: मार्ग में उसने एक सुन्दर तेजयुक्त बालक को जन्म दिया। माता-पिता अत्यन्त ही हर्षित हुए किन्तु उसका नामकरण उन्होंने नहीं किया कि यह कार्य दादा-दादी को ही करना चाहिए। सुविधा की दृष्टि से फिर भी सेवकों ने शिशु का नाम प्रचलित कर दिया- अन्निकापुत्र। देवदत्त और अन्निका मथुरा पहुँचे और माता-पिता से मिले तो देवदत्त ने अपने पुत्र को उनके हाथों में देते हुए कहा- पूज्यवर, दूर देश से कमा कर लाए हुए अपने इस धन को सम्भालिए।

माता-पिता ने बालक को अपनी छाती से लगा लिया और अपनी पुत्रवधू के मस्तक पर अपने आशीर्वाद का हाथ रखते हुए कहा- पुत्र, यह सम्पत्ति भी तो अमूल्य है।

इस प्रकार अपने पूरे परिवार से मिलकर माता-पिता को अपार हर्ष हुआ, निरन्तर उनके हर्ष में वृद्धि ही होती रही अपने पुत्र एवं पुत्रवधू की हार्दिक सेवा का लाभ देते हुए। उनकी स्नेह छाया में उनका पौत्र अन्निकापुत्र दिन दूना रात चौगुना बड़ा होने लगा।

युवावय होने पर उसके लिए विवाह के अनेक प्रस्ताव आने लगे तथा माता-पिता उसके विवाह के सपने संजाने लगे, लेकिन अन्निकापुत्र ने सबसे सविनय यही निवेदन किया- पूज्यवर, सांसारिक भोग भोगते हुए तो अनन्त जन्म व्यतीत हो चुके होंगे, मैं इस जन्म को पुनः उसी दलदल में फँसाकर विनष्ट नहीं करना चाहता। मेरी प्रबल अभिलाषा है कि मैं दीक्षा अंगीकार करुँ तथा संयम की श्रेष्ठ आराधना करके अपनी आत्मा को कृतकृत्य बना दूँ। आप मेरे पूज्य हैं और मेरा हित ही चाहते हैं अतः अनुमति प्रदान कर मुझे कृतार्थ करें।

पुत्र, तुम्हारा संकल्प अत्युत्तम है, इसमें कोई सन्देह नहीं किन्तु माता-पिता की भी अपने पुत्र के लिए

कुछ कामनाएँ होती हैं, क्या तुम उन्हें पूरी करके हमारे दिलों को सुखी नहीं बनाना चाहोगे?

जिसे आप सुख बता रहे हैं, वह सुख नहीं, मात्र सुखाभास है जो कामनाओं का प्रतिफल अवश्य होता है किन्तु अन्ततः दुःख का ही कारण बनता है। आपका पुत्र दीक्षित हो रहा है- इसे आप ऐसा सुख मानें जो स्थायी भी रहेगा तो हितावह और निरन्तर सुखदायक भी- अन्निकापुत्र का भावपूर्ण तर्क अकाट्य था।

माता-पिता से अनुमति पाकर अन्निकापुत्र ने आचार्य के समीप दीक्षा ग्रहण कर ली तथा भावनाओं की परमोत्कृष्टता के साथ वे घोर तपश्चर्या करते हुए अपने कर्म दलिकों की निर्जरा करने लगे। ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र रूप रत्न त्रय को उन्होंने अपने जीवन में इतना प्रकाशमान बनाया कि आचार्य ने संघ नेतृत्व का अपना भार उनके सबल कंधों पर रख दिया।

एक बार आचार्य अन्निकापुत्र विहार करते हुए अपनी शिष्य मंडली के साथ गंगा नदी के तट पर बसी हुई पुष्पभद्रा नगरी में पहुँचे। वहाँ के नगर निवासी आचार्य के वन्दन, दर्शन एवं प्रवचन श्रवण हेतु आए। रानी पुष्पचूला भी आचार्य की सेवा में आई। उन दिनों रानी के सामने एक कठिन समस्या चल रही थी, उसी

का उल्लेख करते हुए उसने आचार्य से निवेदन किया- भगवन्, इन दिनों मैं एक प्रकार की विचित्र मनोदशा से ग्रस्त हो रही हूँ। हर रात मैं नरक के ही स्वप्न देखती रहती हूँ- भयानक यंत्रणाएँ, दारुण क्रन्दन, कष्टदायक दृश्य और यही सबकुछ। देख-देखकर मैं भयभीत एवं दु:खी होती रहती हूँ। कई स्वप्नशास्त्रियों से इसका अर्थ पूछा गया किन्तु सन्तोषजनक समाधान मुझे नहीं मिला है। कृपा करके आप मेरी इस समस्या का समाधान कीजिए।

भद्रे, यह स्वप्न-दर्शन अपने में बहुत गूढ़ अर्थ लिए हुए है। जीव जिस पापाचरण का कुफल भुगतने हेतु नरकों के दु:ख भोगने के लिए विवश होता है उसमें मुख्य हैं- घोर आरंभ, आसक्तिपूर्ण परिग्रह, कुव्यसन सेवन, विषय भोग गृद्धि, धर्म और गुरु के प्रति अनास्था आदि। नरक के दृश्यों को अपने स्वप्न में देखने का आशय यह है कि तुम्हारा मन इस प्रकार के पापाचरण से विरक्त हो उठा है।

प्रभु, मैं अपने अन्त:करण ही गहराई में झांककर देखती हूँ तो वस्तुत: ऐसे विराग का मुझे स्पष्ट अनुभव होता है।

रानी, उसी विराग को दबाए रखने के फलस्वरूप

बार-बार ये स्वप्न आकर मानो तुम्हें एक प्रकार की चेतावनी देते हैं।

कैसी चेतावनी, भगवन्? मैं समझ नहीं पाई।

यही कि तुम अपने विरागभाव को प्रतिफलित क्यों नहीं कर रही हो? ये स्वप्न कहते हैं- नरक से स्वयं बचो और अन्य भव्य प्राणियों को भी बचाने का सफल उपक्रम करो।

क्या करुँ मैं? आप ही आज्ञा दीजिए।

देवानुप्रिये, तुम संसार को त्याग कर श्रमणी बन जाओ, यही तुम्हारी समस्या का सच्चा समाधान है।

तहत् भगवन्- रानी ने श्रेष्ठ भावनाओं के साथ अपनी स्वीकारोक्ति दी।

आचार्य अन्निकापुत्र के सान्निध्य में रानी पुष्पचूला ने दीक्षा ग्रहण की तथा ऐसी उत्कृष्टता के साथ संयम और तप की आराधना की कि अपने आचार्य के पहले साध्वी पुष्पचूला को केवलज्ञान की उपलब्धि हो गई।

भगवती, कृपा करके बतावें कि मुझे केवलज्ञान की उपलब्धि होगी अथवा नहीं? यह प्रश्न पूछा आचार्य अन्निकापुत्र ने केवली पुष्पचूला से।

आचार्य का संयमी जीवन भी उच्चकोटि का था, किन्तु तब तक भी सर्वोच्च ज्ञान की प्राप्ति न होने

से उनके मन-मानस में हल्की-सी शंका उठ खड़ी हुई, उसी के निवारण के लिए उन्होंने यह पृच्छा की।

केवली भगवती बोली- आचार्यवर आपको केवलज्ञान अवश्यमेव प्राप्त होगा, किन्तु वह आपको प्राप्त होगा गंगानदी को पार करते समय जलधारा के मध्य में।

आचार्य उत्तर से सन्तुष्ट हो गए, फिर उन्होंने यह नहीं पूछा कि वह कब और किन परिस्थितियों में प्राप्त होगा। किन्तु उनकी ज्ञान प्राप्ति की उत्कंठा अतीव प्रबल हो उठी। वे गंगा नदी की ओर चल दिए। नदी के तट पर पहुँच कर वे अन्य यात्रियों के साथ नाव पर बैठे।

यह क्या आचार्य नाव में जिस तरफ बैठे थे उस तरफ से नाव पानी में धंसने लगी। नाव का वह हिस्सा जल में निमज्जित होने लगा।

जब आचार्य नाव में बैठे उसी समय एक देव जिसे अपने पूर्वजन्म का वैर स्मरण हो आया उसने ही नाव के उस हिस्से को जिधर आचार्य बैठे थे नदी में डूबाने लगा था। आचार्य को लोगों के द्वारा जल में फैंक देने पर उसने वहाँ भी उन पर उपसर्ग किया। उस समय आचार्य समभाव से सहने लगे। अन्निकापुत्र की विचारश्रेणी ऊर्ध्वगामी बनी। अनित्य भावना का प्रवाह इतना तीव्र

बना कि उससे सारा कर्म कचरा प्रवाहित हो गया केवली बन मुक्ति को प्राप्त हुए।

स्त्रोत- आवश्यक चूर्णि- हरिभद्रीय टीका।

सार- कष्ट की अन्तिम सीमा तक भी समभाव से विचलित न हो, वैसी आत्मा परम पद प्राप्त करती है।

मेरे भी कोई स्वामी हैं?

संगम एक दीनहीन बालक था। पिता गोपालक मर चुके थे और उसकी विधवा माँ धन्या ही किसी प्रकार दो रोटी का जुगाड़ करती थी, पर वह भी बड़ी कठिनाई से ही हो पाता था। एक बार पड़ोस के उस साथी बालक ने उसे बताया कि उसने खीर खाई है। वह भी माँ के पास आया और मचल पड़ा- मैं भी खीर खाऊंगा। जहाँ रोटी भी दुर्लभ, वहाँ खीर कहाँ से लाई जाए? माँ दु:खी हुई, लेकिन बालक की हठ के आगे विवश हो गई। पड़ोसियों से उधार सामान लाकर उसने अपने संगम के लिए खीर बनाई। खीर गरम थी, उसे ठंडी करने के लिये थाली में परोस दी। संगम को खा लेने की बात कहकर वह कुए से पानी लेने चली गई। संगम बड़े चाव से खीर के ठंडी होने की प्रतीक्षा करने लगा।

तभी आ गए भिक्षा हेतु एक मुनिराज। संगम के मन का चाव दूना हो गया कि वह मुनिराज को खीर बहरावे। बालक को सरल और निर्दोष मन से थाली की खीर मुनिराज के पात्र में अत्युत्कृष्ट भावों के साथ उड़ेल दी। खीर बहराकर वह दिव्य हर्ष से उत्फुल्ल हो उठा कि वह मुनिराज को अपने सम्पूर्ण हृदय से श्रेष्ठ दान दे पाया। माता जब पानी लेकर लौटी और बालक को उसने थाली को चाटते हुए देखा तो विस्मित होकर विचार करने लगी, अहो! इसे खीर की कितनी तृष्णा थी। धन्या ने उसे दोबारा खीर परोस दी। उसने आकण्ठ खीर खाई। परिणामस्वरूप भयंकर अजीर्ण हो गया। जिससे उसी रात में संगम ने उस देह को छोड़ दिया। पर अन्त समय तक भी दान का मन में हर्षभाव बना रहा।

उसी अनुपम दान के पुण्य फलस्वरूप संगम का जीव राजगृही के कोट्याधिपति श्रेष्ठी गोभद्र के घर में भद्रा सेठानी की कुक्षि से उत्पन्न हुआ। भद्रा ने गर्भ धारण के समय स्वप्न में शालि (चावल) का लहलहाता खेत देखा था, अतः बालक का नाम शालिभद्र रखा गया।

माता-पिता के तरल स्नेह और विपुल सुख-सुविधाओं के बीच शालिभद्र बड़ा होने लगा। उसे श्रेष्ठ शिक्षा दिलाई गई तथा युवा होने पर बत्तीस

गुणवती श्रेष्ठी कन्याओं के साथ उसका विवाह कर दिया गया। वे एक मुख में बत्तीस दाँतों के समान पति को सुख देती हुई स्नेह और शान्ति के साथ रहने लगी। सारा परिवार सुख के हिंडोले में झूलता था।

इस बीच भगवान महावीर के उपदेश से विरागी होकर गोभद्र सेठ ने दीक्षा ले ली और कठोर तप से काया को कृश करते हुए अन्त में समाधि पूर्वक उन्होंने मरण का वरण किया। अपने शुभ कर्मों के प्रभाव से वे सौधर्म देवलोक में देव रूप से उत्पन्न हुए। अपने पुत्र शालिभद्र के प्रति अतिशय स्नेह होने के कारण तथा शालिभद्र के अतिशय पुण्य के फलस्वरूप देवलोक में भी उन्हें उसका ध्यान बना रहा। पुत्र के जीवन में कोई अभाव न रहे और वह स्वर्गोपम सुख का भोग करे- इस दृष्टि से वे प्रतिदिन पुत्र और पुत्र-वधुओं के लिए दिव्य वस्त्राभूषण स्वर्ग से भेजने लगे।

तब शालिभद्र के सुख का क्या कहना? देवोपम ऋद्धि-सिद्धि के साथ उस का जीवन अपने ही अनोखे ढंग से चलने लगा। अपनी हवेली की सातवीं मंजिल से कभी नीचे उतरने का ही उसे काम नहीं पड़ता था। वास्तविक संसार में क्या कुछ होता था, उस सब से वह अनजान अपने ही स्वर्ग में आनन्द मनाता था। वह ऐसा

ऐश्वर्य भोग रहा था, जो राजगृही के राजा श्रेणिक के भी भाग्य में नहीं था। श्रेणिक की ऋद्धि-सिद्धि भी अपूर्व थी, किन्तु शालिभद्र का ऐश्वर्य तो बस शालिभद्र का ही ऐश्वर्य था।

एक बार नेपाल देश के दो व्यापारी श्रेणिक राजा के सभा भवन में पहुँचे। उन्होंने निवेदन किया- महाराज, हम कुछ अनोखे रत्न-कम्बल लेकर आपकी सेवा में आए हैं कि आप उन्हें क्रय करें- कहकर वे व्यापारी खोल-खोलकर रत्न-कम्बल दिखाने लगे। महारानी भी वहीं थी, वे रत्न-कम्बल उसे बहुत ही पसन्द आये और उसने राजा से उन्हें खरीद लेने का आग्रह किया।

राजा ने पूछा- क्या मूल्य है एक रत्न कम्बल का?

मात्र सवा लाख स्वर्ण मुद्राएँ।

कुल कितने कम्बल हैं?

केवल सोलह अर्थात् बीस लाख स्वर्ण मुद्राओं का माल है। आप जैसे ऐश्वर्यशाली सम्राट के लिए कुछ भी नहीं।

राजा विचार में पड़ गया, बोला- भाई, ये कम्बल तो बहुत महंगे हैं।

क्या आपके लिए, राजन्? ये बहुमूल्य अवश्य हैं, पर आपके लिए यह मूल्य कुछ भी नहीं।

ऐसी बात नहीं है। ये कम्बल हम नहीं खरीद पाऐंगे।

महाराज, बड़ी आशा लेकर बड़ी दूर से आए हैं। इन्हें आप ही नहीं खरीदेंगे तो फिर भला इन्हें कौन खरीदेगा ही कौन? हमें निराश न कीजिए आप- कहते हुए व्यापारियों का गला भर आया।

तब महारानी ने ही हठ किया- महाराज, खरीद लीजिए न। मुझे ये बहुत ही अच्छे लग रहे हैं और फिर इन व्यापारियों के व्यापार को भी राज्य का संरक्षण तो मिलना ही चाहिए। ले ही लीजिए।

महारानी, तुम देखती नहीं, इनका मूल्य इतना अधिक है- बीस लाख स्वर्णमुद्राएँ। राजकोष को बर्बाद थोड़े ही करना है।

अच्छा तो एक कम्बल ही खरीद लीजिए। मेरी भी इच्छा पूरी हो जाएगी और इनकी भी बोहनी।

नहीं, मैं एक भी कम्बल नहीं खरीदूंगा, बहुत महंगा है।

और यों वे दोनों व्यापारी निराश होकर राज प्रासाद से बाहर निकले। चिन्ता की रेखाएँ उनके ललाट पर साफ झलक रही थी- जब राजा ही इन कम्बलों को नहीं खरीद पाया है तो राजगृही नगरी में किसी अन्य की

क्या हैसियत होगी कि वह इनको खरीदे? अब तो उन्हें कहीं अन्यत्र जाकर ही अपना भाग्य आजमाना होगा।

चिन्तातुर लड़खड़ाते कदमों से वे दोनों व्यापारी राजपथ पर चले जा रहे थे। तभी अपने गवाक्ष से भद्रा सेठानी की दृष्टि उन पर पड़ी। उसे महसूस हुआ कि ये कोई परदेशी दिखाई देते हैं और किसी चिन्ता से दु:खी हैं। यहाँ इनका कौन होगा- इन्हें बुलाकर पूछना चाहिए और इनकी चिन्ता का निवारण करना चाहिए। उसने अपने सेवक को नीचे भेजकर उन व्यापारियों को ऊपर बुलवाया, फिर स्नेहपूर्वक पूछा- आप किस चिन्ता से ग्रस्त हैं? मुझे बताइये, मैं उसे दूर कर दूंगी।

माताश्री, आप उसे क्या दूर कर देंगी? वह संभव नहीं। हम बेचने के लिए सोलह रत्न कम्बल लाए थे। जब राजा ही एक कम्बल नहीं खरीद सका तो भला अन्य कौन खरीद सकेगा? कम्बल न बिक पाने की चिन्ता ही हमें सता रही है- सरल भाव से उन्होंने बात बता दी।

बस इतनी सी ही बात है। जितनी रत्न कम्बलें हों यहाँ छोड़ दो और अपना मूल्य मेरे मुनीम से नीचे प्राप्त कर लो- भद्रा ने बिना कोई विवरण जाने कह दिया।

आपने न तो कम्बल का मूल्य पूछा है और न

कम्बलों की संख्या। इनको खरीदना सहज नहीं है। ये बीस लाख स्वर्णमुद्राओं के मूल्य वाले सोलह कम्बल हैं।

भद्रा ने जैसे उनकी पूरी बात सुनी ही नहीं। उसने मुनीमजी को पुकारा और आदेश दे दिया- इन्हें बीस लाख स्वर्णमुद्राएँ दे दें।

व्यापारी तो आश्चर्य से हतप्रभ रह गए, कुछ नहीं बोल पाए- धन्यवाद का शब्द भी नहीं और कम्बल वहीं छोड़ कर मुनीमजी के पीछे-पीछे चले गए। वे जब वहाँ से निकले तो उनके पैर धरती पर नहीं पड़ रहे थे- बीस लाख स्वर्णमुद्राओं का प्रियकारी भार जो उनके कंधे पर लदा हुआ था। उन्होंने निश्चय किया कि रात राजगृही में ही बिताकर प्रातःकाल वे अपने देश की दिशा में प्रस्थान कर देंगे।

रात को महारानी ने महाराज पर एक बार और जोर डाला कि वे कम से कम एक कम्बल तो उसके लिए खरीद ही दें। राजा ने रानी का हठाग्रह स्वीकार कर लिया और प्रातः होते ही उन व्यापारियों को बुलाने के लिए अपने सेवक को भेजा। व्यापारियों ने आकर सूचना दी- महाराज, वे सभी कम्बल रात को ही सेठ शालिभद्र की माता ने खरीद लिए हैं। अब हमारे पास तो एक भी कम्बल नहीं है।

राजा विचार में पड़ गया- उसी के नगर में इतना ऋद्धि सम्पन्न श्रेष्ठि है और वह उसे जानता तक नहीं। कम्बल तो सब बिक गए हैं, अब महारानी की हठ कैसे पूरी होगी- उसने वचन जो दे दिया है? कुछ सोचकर उसने अपने सेवक को आदेश दिया- जाओ, शालिभद्र सेठ के यहाँ जाकर उनमें से एक कम्बल खरीद लाओ। मूल्य साथ में लेते जाना।

सेवक गया और थोड़ी देर बाद लौटकर आ गया, उसने कहा- राजन्, मैं वहाँ जाकर आया हूँ, किन्तु कम्बल प्राप्त नहीं कर सका।

क्यों, क्या सेठ ने देने से मना कर दिया?

नहीं महाराज, भद्रा माता तो बोली कि मूल्य की कोई बात नहीं है, यदि वे कम्बल रहे होते तो अवश्य सम्मानपूर्वक भेंट कर देती।

कहाँ चले गए सोलह कम्बल एक ही रात में? क्या चोरी हो गई?

ऐसा भी नहीं है। उनकी बत्तीस पुत्रवधुएँ हैं, सेठ शालिभद्र की सेठानियाँ। प्रातः जब वे स्नान करने जा रही थीं तो एक कम्बल के दो-दो टुकड़े करके उनको अपने पांव पौंछकर सारे टुकड़े फैंक चुकी थी और उन टुकड़ों को सफाई करने आई मेहतरानी ले जा चुकी थीं,

अत: भद्रा माता ने विवशता प्रकट करते हुए क्षमा चाही है। सेवक ने विस्तार से बताया।

राजा की आँखें यह सुनकर फटी की फटी रह गई। कम्बलें खरीद ली सो तो ठीक, किन्तु पाँव पौंछकर फैंक भी दी गई- ऐसा कैसा ऐश्वर्यशाली है वह सेठ? हम उससे जरूर मिलना चाहेंगे।

श्रेणिक अधीर हो उठा शालिभद्र से मिलने के लिए और उसकी ऋद्धि की विपुलता अपनी ही आँखों से देख लेने के लिए।

पुत्र शालिभद्र, शीघ्रता से नीचे उतरो। स्वामी पधारे हैं- माता भद्रा ने अपने पुत्र को पुकारा।

शालिभद्र आज तक नीचे नहीं उतरा और यह स्वामी कौन आया है कि माता जोर-जोर से पुकार रही हैं। वह झुँझला उठा। उसने उत्तर दिया- माँ, स्वामी आया है तो मैं क्या करुँ? खरीद कर नीचे कोठे में डाल दो। मूल्य अधिक भी हो तो मुझे क्या पूछना। रोज पदार्थों का क्रय-विक्रय तो आप ही करवाती हैं, फिर आज ही मुझे मुझे क्यों कह रही हो?

माँ ने उसके पास जाकर कहा- यह कोई खरीदने बेचने की चीज नहीं है। ये तो अपने नगर के राजा हैं- अपने स्वामी। शीघ्रता से नीचे चलकर उनका स्वागत करो।

शालिभद्र चौंक पड़ा- उसके भी कोई स्वामी हैं? इसका अर्थ है कि वह भी किसी का सेवक है- इतनी विशाल ऋद्धि का स्वामी वह भी किसी का सेवक है, उसका भी कोई स्वामी है- उसके हृदय में गहरी हलचल मच गई। वह आन्दोलित हृदय के साथ ही नीचे उतरा। माता ने उसे राजा से मिलाया, राजा ने बड़ा स्नेह दिखाया तथा उसकी सुन्दर सुकोमल काया देखकर उसे वापिस ऊपर जाकर विश्राम करने की सलाह दी। शालिभद्र तो यही चाह रहा था, वह वापिस ऊपर चला गया और चिन्तन मग्न हो गया।

माता भद्रा ने राजा श्रेणिक का भावभरा स्वागत किया। राजा ने घूम फिर कर पूरी हवेली देखी- बहुमूल्य साज-सज्जा देखकर चकित रह गया।

भोजन पर बैठने से पहले चौक से लगे एक बड़े हौज पर राजा हाथ धोने लगा। अचानक उसकी हाथ की अंगुली में पहनी हुई बहुमूल्य हीरे की अंगूठी जल में गिर पड़ी। असमंजस में राजा जल के भीतर झांकने लगा, बोला कुछ नहीं। फिर हौज का पानी खाली कराने का आदेश दिया। कोई कुछ नहीं समझा कि राजा ऐसा क्यों करवा रहा है? सारा पानी निकाला जा चुका तो राजा देख कर स्तब्ध रह गया कि नीचे का तला दिव्य

रत्नालंकारों से अटा पड़ा है, भला उसमें उसे अपनी एक छोटी सी अंगूठी कहाँ दिखाई देती? नीचे के तल पर कुछ बारीकी से खोजती हुई राजा की आँखों को देखकर माता भद्रा से पूछा- राजन्, इस तरह क्या देख रहे हैं? आपका कुछ खो गया है क्या?

राजा ने उस बात का कोई उत्तर न देकर भद्रा से ही पूछा- इतने सारे दिव्य रत्नों से जड़े हुए अलंकार यहाँ क्यों जमा कर रखे हैं?

राजन् ये जमा नहीं किए गए हैं। ऐसा है कि मेरे पुत्र और बत्तीस पुत्र वधुओं के लिए प्रतिदिन देवलोक से दिव्य वस्त्रालंकार आते हैं। वे उन्हें एक दिन उपयोग में लेकर दूसरे दिन यहाँ स्नान करते समय इसी हौज में फैंक देते हैं। समय-समय पर हौज की सफाई करा दी जाती है। अभी कुछ दिनों से सफाई न होने के कारण ये जमा हो गए हैं।

राजा मन ही मन बोला- अब इस समुद्र में मेरी अंगूठी की बूंद कहाँ दिखाई देगी? उसे खोजना व्यर्थ है।

भद्रा ने जैसे कुछ आभास किया, वह बोली- महाराज का कोई अलंकार इस हौज में गिर गया लगता है।

अरे नहीं, एक हीरे की अंगूठी थी, गिर गई इसमें। उसे ही देख रहा था- राजा ने कुछ चिन्ता के साथ कहा।

भद्रा भीतर दौड़ी गई और भीतर से थोबा भर हीरे की अंगूठियाँ भर लाई और राजा से बोली- राजन्, ये रख लीजिए, मेरी तुच्छ भेंट समझ कर ही।

राजा ने एक अंगूठी उठाई, पर उसका हाथ कांपने लगा- क्या शालिभद्र सेठ की ऋद्धि का कोई पार भी है?

भोजन करके जब वह वहाँ से विदा होने लगा तो वह उस वैभव से अति ही प्रभावित दिखाई दे रहा था- सोचता हुआ गया कि शालिभद्र ने अपने पूर्वभव में ऐसा क्या अतिशय शुभ पुण्यकर्म अर्जित किया जिसके फलस्वरूप उसे इस जन्म में ऐसी दिव्य ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त हुई?

उधर ऐसी अपूर्व ऋद्धि-सिद्धि का स्वामी ऊपर कक्ष में जाकर गहन चिन्तन में डूब गया कि उसका भी कोई स्वामी है- वह स्वाधीन नहीं, पराधीन है और यदि वह पराधीन है तो उसकी ये सारी सुख सामग्रियाँ, सारी ऋद्धि-सिद्धि निरर्थक हैं- वह इनसे सुखी कैसे रह सकता है? तब वह पराधीन नहीं रहेगा- सच्ची स्वाधीनता को प्राप्त करेगा, जहाँ कोई यह न कह सके कि अमुक तेरा स्वामी है।

ज्यों-ज्यों शालिभद्र की चिन्तन धारा अन्त:करण की गहराई में प्रवेश करती गई, उसे अपना वह विशाल

वैभव कष्ट कर प्रतीत होने लगा- पराधीनता के अनुभव के साथ वह सारा सुख उसके लिए दु:ख में रूपान्तरित हो गया। इतना ही नहीं, उसे अपनी पत्नियाँ भी मोह-बन्धन रूप प्रतीत होने लगी। सारे संसार से उसे विराग हो आया।

तभी आचार्य धर्मघोष का नगर में पदार्पण हुआ। शालिभद्र ने भी उनके उपदेशामृत का पान किया और दीक्षित हो जाने का निर्णय ले लिया- वह सदाकाल के लिए स्वाधीन बनेगा। घर आकर माता से निवेदन किया- मातुश्री, मैंने इस संसार की सारी पराधीनता के बंधन तोड़ देने का निश्चय कर लिया है।

भद्रा ने समझाने का प्रयत्न किया पर अंगारे पर भस्म कहाँ टिक पाती है। उसे तो हवा का एक झौंका ही पर्याप्त है और वह झौंका आया उसी के बहनोई धन्नाजी का वैराग व आह्वान। बस शालिभद्र एकदम तैयार हो प्रव्रजित हो गया। कठोर तपश्चरण से ढेर सारे कर्मों को खपाया। किन्तु सात लव जितनी आयु कम रहने के कारण उसका जीव अनुत्तर विमान में देबरकय से उत्पन्न हुआ।

स्त्रोत- त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र।

सार- आत्म ऋद्धि के समक्ष अन्य कोई ऋद्धि नहीं।

❖ ❖ ❖

ओ कायर भाई की बहिन!

अरे सेठ, अपनी एक लाख मुद्राएँ लो और गिरवी रखी हुई मेरी एक आँख मुझे वापिस दो- एक काना व्यक्ति आकर धमकाते हुए बोला सेठ गोभद्र से।

सेठ गोभद्र कुछ भी नहीं समझ पाया कि यह व्यक्ति कौन है और आँख को उसके यहाँ गिरवी रखने का मामला क्या है? वह बोला- तुम कौन हो और आँख मेरे यहाँ गिरवी रखने की कैसी बात कर रहे हो?

काना अपना हाथ नचाते हुए कहने लगा- खूब बन रहे हो, सेठ। इतनी जल्दी सारा मामला भूल गए- अभी तक तो एक महीना भी पूरा नहीं हुआ।

जब कोई बात ही नहीं हुई तो उसे भूल जाने या याद करने का प्रश्न ही कहाँ उठता है?

याद करो, याद करो। मैं एक माह पहले राजगृही आया था और मुझे अचानक कुछ धन की आवश्यकता पड़ गई थी, तब मैंने अपनी एक आँख आपके पास

गिरवी रखकर एक लाख मुद्राएँ ली थीं। वे ही मैं लौटाने और अपनी आँख वापिस लेने आया हूँ। देख नहीं रहे- इसी कारण मैं काना हूँ। अब तो याद आया न?

तुम एकदम झूठ बोल रहे हो। मैंने तो अपने जीवन में यह पहली बार सुना है कि आँख भी गिरवी में दी और ली जा सकती है। उसके लिये मैं महाराजा श्रेणिक के यहाँ तुम्हारे विरूद्ध अभियोग चलाऊंगा। ध्यान रखो, इसके लिये तुम्हें कठोर दण्ड मिलेगा।

देख लूंगा, दण्ड किसे मिलता है? मैं भी यही चाह रहा था कि अभियोग राजा के पास पहुँचे- अकड़कर काना बोला।

अन्ततः मामला महाराजा श्रेणिक के पास पहुँचा। राजा आश्चर्य में डूब गया कि क्या ऐसा भी हो सकता है? यह विशिष्ट बुद्धि प्रयोग का मामला है और ऐसे मामले उसका बुद्धिमान महामंत्री अभय सरलता से सुलझा लेता था, पर उस समय वह राजगृही में नहीं था। राजा पशोपेश में पड़ गया- सेठ गोभद्र सज्जन और सरल स्वभावी हैं और यह काना निश्चय ही धूर्त है। फिर भी न्याय ऐसा होना ही चाहिए कि वह न्याय दिखाई दे। राजा चिन्तित हो उठा।

राजा की चिन्ता को समझकर उनकी सभा में

बैठे हुआ एक विचक्षण युवक धन्यकुमार खड़ा हुआ और बोला- राजन्, यदि आप उचित समझें तो यह मामला न्याय के लिये मुझे सौंप दीजिए, मैं इसका सही न्याय कर दूंगा।

अवश्य युवक अवश्य, यह मामला तुम्हें सौंपा जाता है, तुम इसका न्याय कल खुली सभा में ही करना- राजा ने प्रसन्न होकर यह आदेश दे दिया।

दूसरे दिन ऐसे पेचीदा मामले में नए बुद्धिमान युवक का न्याय जानने के लिए सभा में अत्यधिक उपस्थिति थी।

सबके सामने धन्यकुमार खड़ा हुआ और कहने लगा- इस काने व्यक्ति की बात सही है। सेठ गोभद्र की बही में गिरवी रखी गई आँखों की बहुत बड़ी संख्या है, उनमें से इसकी आँख छांटकर निकालने के लिए उसका इसकी दूसरी आँख से मिलान जरूरी है। कारण, किसी दूसरे की बेमेल आँख यह वापिस लगा नहीं पाएगा, अतः यह व्यक्ति यदि अपनी लगी हुई दूसरी आँख निकालकर दे दे तो तुरन्त उस आँख से मिलान करके इसकी अपनी आँख गिरवी से छोड़ दी जाएगी।

तब उसने उस काने व्यक्ति की ओर रुख करके कहा- तुम मेरा अभिप्राय समझ गए होगे? अब विलम्ब

न करो- अपनी लगी हुई आँख तुरन्त निकाल कर दे दो- ताकि मिलान करके तुम्हारी गिरवी पड़ी आँख वापिस लौटा दी जाए।

यह सुनकर काने की कानी अक्ल धूल चाटने लगी। वह समझ गया कि यह उसकी झूठी मांग का करारा जवाब है। कहाँ तो वह सेठ को ठगने चला था, और कहाँ उसको ही अंधा बना देने का संकट सामने आ गया है? उसकी कलई खुल गई। उसे बचाव का कोई रास्ता नहीं दिखाई दिया। वह राजा के पाँवों में गिर गया और गिड़गिड़ाकर माफी मांगने लगा- महाराज, मैंने सेठ पर झूठा और मायावी आरोप लगाकर गंभीर अपराध किया है, किन्तु मैं परदेशी हूँ, आप कृपा करके मुझे क्षमादान करें। मैं भविष्य में ऐसी नीचता कदापि नहीं करूंगा।

राजा ने उसे कड़ी चेतावनी दी और तुरन्त नगर छोड़कर चले जाने की आज्ञा दी। वह धन्यकुमार की विचक्षण बुद्धि से बहुत ही प्रसन्न हुआ तथा उसने उस युवक को ससम्मान पुरस्कृत किया।

गोभद्र सेठ तो धन्यकुमार के बुद्धिकौशल पर मुग्ध हो उठा। स्नेहभरा अनुरोध करके वह उसे अपने घर पर ले गया। उसको मनुहारपूर्वक भोजन कराने तथा

उसका परिचय पाने के बाद गोभद्र ने अपनी ओर से बात छेड़ी- युवक, तुमने मेरे मामले का अद्‌भुत रीति से न्याय किया ही, किन्तु तुम्हारी औत्पति की बुद्धि श्लाघ्य है। मैं तुम्हारे व्यक्तित्व पर मुग्ध और गौरवान्वित हूँ। मैं तुम्हें अपना बनाना चाहता हूँ।

पूज्यवर, मैं आपका अभिप्राय समझा नहीं, मैं तो आपका अपना हो गया हूँ- धन्यकुमार ने प्रेमपूर्ण स्वर में कहा।

देखो, यह मेरा पुत्र शालिभद्र है और यह है इसकी छोटी बहिन सुभद्रा। यदि तुम इसे पसन्द करो तो इसे तुम्हारे साथ विवाह-बंधन में बांधने की मेरी बलवती इच्छा हो गई है- गोभद्र ने अपने मन में उठी बात कह ही दी।

धन्यकुमार वहाँ बैठी सुभद्रा को देख ही रहा था- अपूर्व रूप और गुणों की स्वामिनी थी वह। दूसरे, गोभद्र जैसे प्रमुख श्रेष्ठि का जामाता बनना भी कम गौरव की बात नहीं थी। उसने सेठ के प्रस्ताव का उत्तर देते हुए निवेदन किया- पूज्य, मैं आप जैसे वरिष्ठ जन के प्रस्ताव को अस्वीकार कैसे कर सकता हूँ? मैं तो इसे अपने लिए गौरव मानता हूँ।

स्वीकृति की ही देर थी। विवाह समारोह की

भव्य तैयारियाँ हुई तथा सेठ गोभद्र ने अपनी पुत्री का विवाह सेठ धन्यकुमार के साथ धूमधाम से कर दिया। धन्यकुमार ने उसकी कर्मठता के अनुसार उसे अपनी पट्ट सेठानी बनाया और उच्च सम्मान दिया।

तदनन्तर वह अपने परिवार के साथ सुखपूर्वक रहने लगा।

धन्यकुमार अपने व्यापारिक क्षेत्र में विशिष्ट ख्याति प्राप्त करके धन्ना सेठ के नाम से जाना जाने लगा। वह अपने परिवार में और बाहर सर्वत्र अतीव लोकप्रिय था। प्रतिदिन उसकी आठों पत्नियाँ उसे उबटन, मालिश आदि की परिचर्या करके स्नान कराती थीं। एक दिन सदा की तरह उसकी आठों पत्नियाँ उसे स्नान करा रही थीं, स्नान के पहले उबटन किया जा रहा था। कोई पत्नी एक अंग पर उबटन लगा रही थीं तो अन्य किसी दूसरे अंग पर। इस समय सुभद्रा उसकी पीठ पर उबटन लगा रही थीं, सुभद्रा उबटन लगा तो रही थी, उसका मन उसके भाई शालिभद्र में उलझा हुआ था। वह पिछली संध्या को ही अपने पीहर जाकर आई थी और जान पाई थी कि एक-एक पत्नी का प्रतिदिन त्याग करते हुए उसका भाई तैतीसवें दिन दीक्षा अंगीकार कर लेगा। उस समय भाई का मोह उसके हृदय में उमड़-घुमड़ रहा

था। उबटन लगाते हुए वही मोह पिघल कर आँसू बन गया और आँसू की दो गरम-गरम बून्दें धन्ना सेठ की पीठ पर ढुलक गई।

पीठ पर गरम-गरम बून्दों का स्पर्श पाकर धन्ना सेठ चौंक उठा- यह तो जल की बून्दों का स्पर्श नहीं है। शीतल होने की अपेक्षा ये गरम बून्दे उसकी पीठ पर कहाँ से गिरी हैं? उसने पीछे मुड़कर देखा कि उसकी पत्नी सुभद्रा की आँखों से आँसू बह रहे हैं। वह चिन्तित हो उठा और भर्राये स्वर में बोला- प्रिय सुभद्रे, तुम्हारी इन बड़ी-बड़ी आँखों में आँसू क्यों? क्या मेरे घर में तुम्हें कोई कष्ट है? मुझसे कोई भूल तो नहीं हो गई है जिसके कारण तुम्हारे सुकोमल हृदय को दु:ख पहुँचा हो और वही दु:ख इस समय आँसू बनकर बरस पड़ा हो। मुझे सच-सच बता दो।

प्राणनाथ, मैंने आपके घर में सदा सुख ही सुख प्राप्त किया है- दु:ख का तो कभी मुझसे परिचय ही नहीं हुआ। फिर आप यह कैसे मानते हैं कि आपके लिए ये आँसू बह रहे हैं? ऐसा होना तो कभी संभव नहीं- सुभद्रा ने स्नेह विगलित होते हुए मधुर स्वर में कहा- पर आँसू तो तुम्हारी ही आँखों से बह रहे हैं, न?

नाथ, यह तो सत्य है। आपको शायद यह तथ्य

ज्ञात नहीं है कि मेरा भाई शालिभद्र दीक्षा ग्रहण कहने के लिए संकल्पबद्ध हो गया है। वह नित्य अपनी एक-एक पत्नी का त्याग करते हुए बत्तीस दिनों में अपनी बत्तीसों पत्नियों का त्याग कर देगा और तैंतीसवें दिन मुनि बन जाएगा। उसके ही वियोग की बात सोचते हुए मेरा हृदय द्रवित हो रहा है और आँखें भी बरस पड़ी हैं- सुभद्रा की आँखों से तब तो आँसुओं की धारा ही बह चली।

आशा के विपरीत धन्ना सेठ सहज में उपहास की भाषा में बोला- अरी सुभद्रे, तेरा भाई कायर है। जब त्यागना है तो त्यागना है, एक-एक करके त्यागने की ऐसी कायरता क्यों? संसार त्याग तो वीरों का धर्म होता है, फिर वह ऐसी कायरता कैसे दिखा रहा है। त्यागना है तो सबको एक साथ त्याग कर निकल जाए।

बुरा लगा सुभद्रा को कुछ कड़े स्वर में बोल पड़ी- मेरे स्वामी, कहना आसान होता है, लेकिन करना बहुत ही कठिन। एक-एक करके भी वह सबको त्याग तो देगा ही, परन्तु आप?

'आप' पर प्रश्नवाचक लगाकर तुम कुछ कहना चाहती हो, पर तुम्हें कहने की आवश्यकता नहीं। धन्ना एक वीर है, कोई कायर नहीं। वह तुम्हारे हृदय की बात

समझ गया है। इसी समय से तुम मेरी आठों पत्नियाँ मेरी बहनें हुई और मैं उठ कर जा रहा हूँ भगवान महावीर की सेवा में दीक्षा ग्रहण करने के लिए- कहते हुए धन्ना सेठ सचमुच ही उठ खड़ा हुआ।

सुभद्रा तो धाड़ मारकर रो पड़ी- नाथ, आप तो अकारण ही रुष्ट हो गए। मैं आपके लिए ऐसा कुछ भी नहीं कहना चाहती थी, आप मुझे क्षमा करें।

धन्ना सेठ गम्भीर होते हुए बोला- मैं किसी से रुष्ट नहीं, अपितु परम प्रसन्न हूँ कि तुमने मेरे सोये हुए वीरत्व को एक ही झटके में जगा दिया। तुम तो मेरी उपकारी बन गई हो।

सुभद्रा ही नहीं, सभी पत्नियाँ विलाप करने लगी- हमें अनाथ बनाकर आप यों यकायक न निकलो, कुछ हमारी मनोदशा का तो विचार करो।

अब मेरे लिए तुम सब मेरी बहिनें और यह सारा वैभव मिट्टी है। वीर कर गुजरता है, पीछे मुड़कर नहीं देखता- बिना स्नान किए ही धन्ना ने वस्त्र पहने और चल दिया अपनी ससुराल- शालिभद्र के घर।

रुकिये- आठों का सुदृढ़ स्वर धन्ना को सुनाई दिया। वह रुककर बोला- कहो।

जब आप वीर प्रभु के पथ पर प्रयाण कर रहे हैं

तो हम पीछे क्यों रहें? हम भी दीक्षा अंगीकार करेंगी। हमें भी साथ लेकर चलिए। वीर महिलाओं की तरह आठों आगे बढ़ आई।

धन्ना आनन्दविभोर हो उठा- इससे बढ़कर मेरी हार्दिक प्रसन्नता का भला और क्या विषय हो सकता है? हम वीरभाव से दीक्षा लें और वीरभाव से ही संयम का पालन करें। अब मैं सुभद्रा को कभी कायर नहीं कहूंगा।

तब आठों वीर महिलाओं को साथ में लेकर वीर धन्ना शालिभद्र के द्वार पर पहुँचा और वीरभाषा में उद्‌बोधन देने लगा-

मैं तुम्हें पूछता हूँ कि तुम्हें सचमुच में संसार से वैराग्य हुआ है या तुम वैराग्य का नाटक मात्र कर रहे हो?

यह क्या पूछा आपने? क्या मैं नाटक कर रहा हूँ? संभवतः आपको ज्ञात नहीं कि मैंने तो दीक्षा अंगीकार करने का निश्चय कर लिया है।

मुझे सब ज्ञात हो गया है, शालिभद्र, और इसी ज्ञान से मुझे और इन आठों को भी दीक्षा की प्रेरणा मिली है। किन्तु जब वैराग्य हो गया है तो ऐसा कायरतापूर्ण आचरण क्या कि एक-एक पत्नी को एक-एक दिन त्याग रहे हो? क्या तुम्हें सम्पूर्ण वैराग्य एक साथ नहीं

हुआ, बल्कि क्या वह क्रमिक रूप से एक-एक पत्नी के त्याग से हो रहा है?

शालिभद्र चिन्तन की गहराई में उतरते हुए बोला- जीजाजी, वास्तव में मैं कायर हूँ। आपने मेरी आँखें खोल दी। आपकी वीरता पर तो मैं मुग्ध हो उठा हूँ कि छोटी-सी बात पर आप और इन सबने इतना बड़ा निर्णय ले लिया। अब मैं भी पीछे नहीं रहूंगा। आपके साथ ही चलूंगा- एक वीर पुरुष के प्रेरणादायक नेतृत्व में।

और सब साथ-साथ चल पड़े दीक्षा अंगीकार करने एवं स्व-पर का कल्याण-साधने की अमृतमयी दिशा में।

भद्रा माता एकटक उन्हें देखती रही और मातृप्रेम के आँसू बरसाती रही।

बारह वर्ष बाद भगवान महावीर पुनः राजगृही पधारे। मुनिद्वय शालिभद्र और धन्यकुमार भी उनके साथ ही थे। इन वर्षों में इन दोनों मुनियों ने अति वीरभाव से तपश्चरण किया था कि उनके शरीर इतने कृश हो गए जो पहचाने भी नहीं जा सकते थे। उस दिन उनके तप का पारणा था। भगवान भिक्षार्थ अनुज्ञा प्राप्त करने पहुँचे तो भगवान ने कहा शालिभद्र! आज तुम्हारी माता तुम्हें भिक्षा देगी।

वे मुनि भद्रा माता के द्वार पर पहुँचे। भद्रा को संवाद मिल चुका था कि भगवान का नगर के बाहर के उद्यान में पदार्पण हुआ है तथा उसके दोनों पुत्र मुनि भी साथ में हैं। इसी कारण वह सपरिवार दर्शन-वन्दन हेतु जाने के लिए तैयारी कर रही थी। जब मुनि द्वार पर आए, तब न तो भद्रा उन्हें पहचान पाई और न ही भिक्षा के योग्य निर्दोष पदार्थ उपलब्ध थे- इस कारण मुनि वहीं से वापिस लौट गए।

मार्ग में उन मुनियों को अपने सिर पर दही का मटका रखे हुए ग्वालिन मिली। मुनियों को देख उसका वात्सल्य भाव प्रबल हो उठा, उसने मुनियों की अभ्यर्थना की एवं व्यक्त की दही का दान करने की सरल भावना। मुनियों ने दही ग्रहण करके अपने तप का पारणा किया।

किन्तु मुनियों के हृदय में हलचल मची हुई थी, वे शीघ्र भगवान की सेवा में लौटे। भद्रा भी वहीं बैठी हई थी। मुनि शालिभद्र ने निवेदन किया- भगवन् आपकी वाणी का रहस्य हम समझ नहीं पाए। आपने फरमाया था कि माता की दी हुई भिक्षा से पारण होगा किन्तु ऐसा नहीं हुआ।

ऐसा ही हुआ है शिष्य, तुम्हें दही की भिक्षा देकर पारणा कराने वाली तुम्हारी पूर्वभव की माता धन्या ही थी- भगवान ने फरमाया।

धन्या माता की भिक्षा पाकर शालिभद्र और धन्य मुनि वस्तुतः धन्य हो गए।

स्त्रोत- धन्ना-शालिभद्र महाकाव्य (पूर्णसद्र रचित)

सार- धर्मक्षेत्र में शौर्य का अमित महत्व होता है।

❖ ❖ ❖

देवता दोनों बार हारे

देवों, भारतभूमि की महिमा अपार है। इस पर जन्म लेने के लिए देवता तक उत्सुक रहते हैं। वर्तमान में इसी भूमि पर एक ऐसा व्यक्ति विद्यमान है जिसका रूप अतुलनीय है। वह व्यक्ति है चक्रवर्ती सनत्कुमार। उसके शरीर की शोभा और छटा अनुपम है, मानो साक्षात् कामदेव से भ्झी बढ़कर हो। सौधर्मेन्द्र सुधर्मा में सुधर्म सिंहासन पर अनेक देव-देवी गण के साथ विराजमान था। उसी समय एक ईशान कल्प का देव उपस्थित हुआ। उसकी देह कान्ति के समक्ष उपस्थित अन्य सारे देवों की देह कान्ति फीकी पड़ गई। उस देव के वापस चले जाने पर देवों के वापस चले जाने पर देवों ने सौधर्मेन्द्र से पूछा- उस देव की ऐसी शारीरिक कान्ति किस कारण से है? शक ने कहा- पूर्वभव में इसने आयम्बिल तप का अखण्ड आराधन किया था। उसी के कारण उसकी दिव्य देह कान्ति है। देवों ने पूछा- क्या

अन्य भी कोई ऐसा दीप्तिमान है। देवताओं के राजा इन्द्र ने देवसभा में इस तथ्य का उद्‌घाटन किया।

देवेन्द्र होकर मृत्युलोक के मनुष्य के रूप की इस प्रकार जो प्रशंसा कर रहे हैं, वह उचित नहीं है। इस प्रकार देवेन्द्र के वचनों पर अश्रद्धा करते हुए विजय और वैजयन्त देव सोचने लगे। मनुष्य शरीर का रूप देव शरीर से बढ़कर हो ही नहीं सकता। अतः हमें इस तथ्य की परीक्षा करनी चाहिए। मनोमन ऐसा विचार कर दोनों देव परीक्षार्थ उद्यत हुए।

हस्तिनापुर में चक्रवर्ती के राज-प्रासाद का द्वारपाल अपने सामने आ रहे दो अतिशय वृद्ध ब्राह्मणों को देख कर हैरान-सा रह गया। दुर्बल शरीर थके-थके पाँव, सब ओर से बहता हुआ पसीना, धूल से लिपटते हुए सिर और दाढ़ी मूंछों के सफेद बाल तथा सबसे अधिक विचित्र बात यह कि दोनों के सिर पर फटे हुए जूतों का एक-एक बड़ा गठ्‌ठर। बुरी तरह से खांसते-खांसते वे दोनों द्वारपाल तक आए और बोले- द्वारपाल, तुम अब तनिक भी विलम्ब न करो। हम इसी समय चक्रवर्ती सनत्कुमार के अद्वितीय रूप-दर्शन के अभिलाषी हैं। हमारी उत्सुकता फटी पड़ रही है। शीघ्र जाओ और हमारे मिलने की अनुमति लेकर आओ।

द्वारपाल ने पूछा- आप कौन हैं? कहाँ से आ रहे हैं? और मस्तक पर फटे जूतों का इतना बड़ा गठ्ठर आप दोनों ने क्यों उठा रखा है?

द्वारपाल, यह सब तुम हमसे न पूछो। बाल्यकाल में हमने सुना था कि चक्रवर्ती सनत्कुमार का रूप इतना अद्‌भुत और सुदर्शनीय है कि उसकी देवों के रूप के साथ भी कोई तुलना नहीं। तभी से हम उस रूप के दर्शन की लालसा लेकर घर से निकल पड़े और तब से लगातार चलते ही आ रहे हैं- चलते ही आ रहे हैं कि अब जाकर मंजिल पर पहुँचे हैं। यह तो तुम देख ही रहे हो कि हम दोनों ब्राह्मण हैं और यह भी तुम जान गए हो कि हम कितनी अकल्पनीय दूरी से चले आ रहे हैं। अब तो तुम हमारी अभिलाषा की उग्रता समझ गए हो न? इतने जूते फाड़ दिए हैं हमने इस यात्रा में।

और वास्तव में इतना सुनने के बाद द्वारपाल की उन दोनों ब्राह्मणों से और कुछ कहने की कोई इच्छा नहीं रही। वह तेज कदमों से भीतर चला गया। सनत्कुमार स्नानागार में पहुँच चुके थे, किन्तु वह रुका नहीं- वहीं पहुँच गया और बोला- राजाधिराज की जय हो। बड़ी दूर से पाँवों-पाँवों चलकर आ रहे दो वृद्ध ब्राह्मण आपका इसी समय रूप दर्शन करना चाहते हैं- कहकर

द्वारपाल ने उनका सारा विवरण सुना दिया तथा अनुरोध किया कि उनकी दीर्घकालीन अभिलाषा की शीघ्रातिशीघ्र पूर्ति हो तो वे सन्तोष की साँस लेंगे।

सनत्कुमार को भी सब सुनकर कौतूहल हुआ कि ऐसे ये कौन ब्राह्मण हैं, उन्होंने अपने द्वारपाल को आदेश दिया- जाओ, उन दोनों ब्राह्मणों को यहीं स्नानागार में ले आओ।

दूर से ही सनत्कुमार को देखकर वे अपार प्रसन्नता से झूम उठे और मुग्ध स्वर में बोल पड़े- सत्य है, एकदम सत्य है। ऐसा निर्दोष रूप अलभ्य है। वे पास में पहुँचे और विमुग्ध भाव से चक्रवर्ती के एक-एक अंग-प्रत्यंग का अवलोकन करने लगे। अपूर्व तृप्ति का प्रकाश उनके मुखों को चमका रहा था, उन्होंने कहा- सम्राट, वर्षों से जो आँखें इस रूप को देखने को तरस रही थी, वे आज हकीकत में ठंडी हुई हैं। ऐसा रूप मनुष्य लोक में तो क्या, देवलोक में भी नहीं होगा।

अपने रूप-स्वरूप की सराहना किसे नहीं भाती? और जब वह यथार्थ हो तो उससे अवश्य हृदय हर्ष से भर उठता है। सनत्कुमार के लिए यह सुनना नया नहीं था। बोले- ब्रह्मदेवों, अभी तो मैं खुले बदन बैठा हूँ और सज्जारहित हूँ। इस स्वरूपवान शरीर को ही देखना तो

तब देखना, जब यह सर्वसज्जा युक्त होकर राज्यसभा में सिंहासनारूढ़ हो।

दोनों ब्राह्मणों ने अत्यधिक प्रशंसा भाव से अपने सिर हिलाए और सुध-बुध खोये से रूप देखते-देखते ही उल्टे पाँव वे बाहर निकल आए। तब एक ने दूसरे के कान में इतना ही कहा- देवेन्द्र की रूप प्रशंसा सर्वथा सत्य रही है- हमारा संशय निर्मूल ठहरा है। इन्द्र के कथन में शंका करके हमने अच्छा नहीं किया। दूसरा बोला- अब जो हुआ, हम इन्द्र से अपने अविश्वास के लिये क्षमा मांग लेंगे, किन्तु इस बहाने हमने अनुपम रूप के दर्शन तो कर लिये।

दोनों ब्राह्मण रूपधारी देव तब आपस में बतियाने लगे। एक ने कहा- रूप दर्शन तो हमने कर लिये- अब लौट चलें। दूसरा बोला- जब चक्रवर्ती ने कहा है तो राज्यसभा में भी उनका रूप दर्शन कर ही लें। सुदर्शनीय को जितनी भी बार देखो, अच्छा ही है।

राज्यसभा में उच्चस्थ सिंहासन पर चक्रवर्ती सनत्कुमार बैठे हुए थे। अंगराग चन्दन से उनका शरीर सजा था एवं उस पर सजे हुए थे सुन्दरतम वस्त्र और अलंकार। राज्यसभा और उसके सदस्यों की शोभा अपूर्व थी। सनत्कुमार का दिप्-दिप् करता हुआ रूप किसी का भी मन मोह लेता था- उसकी कान्ति और शोभा अपार थी।

तभी द्वारपाल उन्हीं दोनों ब्राह्मणों को लेकर वहाँ पहुँचा। चक्रवर्ती को उन्हीं की प्रतीक्षा थी। जब दोनों ने एक क्षण के लिए उनके मुख की ओर देखा और तत्काल आँखें नीची कर ली। राजा के आश्चर्य की सीमा नहीं रही- जो स्नानागार में देखे उनके सज्जाहीन रूप की इतने मुक्त कण्ठ से सराहना कर रहे थे, वे इस समय ऐसा क्यों कर रहे हैं? मुख पर प्रसन्नता बिखेरते हुए चक्रवर्ती ने कहा- ब्रह्मदेवों, अब देखो सनत्कुमार के अनुपम रूप को। लेकिन एक झलक देखकर तुमने अपनी आँखें नीची क्यों कर ली है?

आँखें नीची झुकाए-झुकाए ही वे दोनों बोले- नहीं, सम्राट, ऐसी कोई बात नहीं है।

चक्रवर्ती का मुँह तमतमा आया, कहने लगे- छिपाते क्यों हो? कोई न कोई बात तो अवश्य है। जो भी बात हो, तुम निर्भय होकर कह डालो।

यदि ऐसा ही है तो राजन्, सुनिए! हमें जिस रूप को देखने की उत्कृष्ट अभिलाषा थी, वह तो हमने स्नानागार में देख लिया और उसे जी भर सराह लिया। अब इसमें ऐसा कुछ भी नहीं बचा है जिसकी हम सराहना भी कर सकें- दोनों ब्राह्मणों ने निःशंक होकर कह डाला।

सनत्कुमार के लिए तो यह किसी वज्रपात से कम नहीं था। अपने रूप के बारे में इन लोगों का दृष्टिकोण इतने से अल्प समय में बदल क्यों गया? वे सोचने लगे- इस समय तो मेरे रूप की ये अधिकतम सराहना करेंगे- ऐसी मेरी आशा थी, किन्तु यह क्या हो गया है कि ये एकदम विपरीत भाव ही प्रदर्शित कर रहे हैं? क्रोध, खेद, आशंका, भय- इन सबसे उनका मन ग्रस्त होने लगा। वे बोले- तुम क्या कह रहे हो इसका अर्थ भी जानते हो?

महाराज, सम्पूर्ण अर्थ को समझ कर ही हमने यह कहा है। इसमें बुरा न मानिए। दोनों ब्राह्मण करबद्ध खड़े रहे।

फिर तुम भूल कर रहे हो। जो तुमने कहा है वह अपमानजनक है। इसका क्या दण्ड हो सकता है- यह तुम्हें भली-भांति समझ लेना चाहिए। चक्रवर्ती की आँखें आसक्त हो उठी।

यदि हम मिथ्या हों तो हमें दण्ड पाने में कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु हम मिथ्या नहीं कह रहे महाराज! वह निर्दोष रूप अब सदोष हो गया है, इस कारण सराहना के योग्य नहीं रहा। ब्राह्मणों ने शान्त भाव से कहा।

यह तुम्हें प्रमाणित करना होगा कि वह निर्दोष रूप सदोष कैसे हो गया है?

उन्होंने कहा- महाराज! देवों के रूप-यौवन-तेज प्रथम वय से लेकर छः माह आयु शेष रहने तक अवस्थित रहता है, जीवन-भर नहीं घटता। पर आपके शरीर में तो महान् आश्चर्य दिखाई देता है। आपका जो रूप-लावण्यादि देखा, वह तो अभी ही नष्ट हो गया।

राजा ने कहा- आपको कैसे ज्ञात हुआ?

तब उन्होंने शक्र की प्रशंसा आदि सम्पूर्ण वृत्तान्त राजा को बताया।

उनकी बातों को सुनकर केयूर आदि से विभूषित बाहु युगल को देखकर, हार आदि से विभूषित स्व-वक्षस्थल को निस्तेज देखकर चिन्तन किया- अहो! संसार की अनित्यता! शरीर की असारता! इतने से समय में मेरे शरीर का यौवन व तेज नष्ट हो गया। अहो! इस भव में प्रतिबन्ध अयुक्त है। शरीर के प्रति मोह रखना अज्ञान-दशा है। रूप-यौवन का अभिमान करना मूर्खता है, भोग का आसेवन उन्माद है। परिग्रह ग्रह की तरह है। अतः इन सभी का त्याग करके परलोक में हितकारी संयम को ग्रहण कर लूँ।

ऐसा विचार करके चक्रवर्ती ने अपने पुत्र को

राज्य पर अभिषिक्त किया। स्वयं संयम ग्रहण के लिए उद्यत हुआ। तब उन देवों ने हारकर नतमस्तक होते हुए कहा-

"अणुचरियं धीर तुमे, चरियं नियस्स पुव्वपुरिसस्स।
भरहमहानरवइणो, तिहुअणविक्खाय कित्तिस्स।।"

इत्यादि कहकर देव चले गए। चक्री ने भी उसी समय सर्वस्व त्यागकर विरताचार्य के समीप प्रव्रज्या अंगीकार की। बेले की तपस्या के पारणे में प्रान्त-नीरस आहार करने से उसके शरीर में कण्डू, ज्वर, कास, श्वास, स्वरभंग, अक्षि वेदना और उदर-वेदना- ये सात व्याधियाँ उत्पन्न हो गयीं। उन्होंने 700 वर्षों तक उन व्याधियों को सहन किया। उग्र तप करते हुए वे आमर्ष औषधि, खेलौषधि, विप्रुडौषधि, जल्लौषधि तथा सर्वौषधि आदि लब्धियों से सम्पन्न हो गए।

फिर कभी किसी प्रसंग से इन्द्र ने देवसभा में सनत्कुमार मुनि के सर्वश्रेष्ठ आत्म-स्वरूप की सराहना की। उनकी आत्मा की ऐसी सहनशीलता, गुणवत्ता और सुन्दरता कहीं भी अन्यत्र प्राप्य नहीं है। तब भी उनका रूप अनुपम था और अब भी उनका आत्मिक रूप अनुपम है।

वे दोनों देव विजय और वैजयन्त सभा में बैठे हुए थे। उन्होंने फिर से परीक्षा लेने का विचार किया।

मुनिराज, हमारी वन्दना स्वीकार करें। हम दोनों कुशल वैद्य हैं। इधर से निकल रहे थे तो दूर से ही हमें ज्ञात हो गया कि आप अनेक असाध्य रोगों से ग्रस्त हैं। क्या आप हमें अपनी रोग परीक्षा एवं चिकित्सा का कृपापूर्ण अवसर प्रदान करेंगे? सामने से आ रहे दो वैद्यों ने मुनि सनत्कुमार के समक्ष अपना निवेदन प्रस्तुत किया।

मुनि कुछ न बोले, समभाव से उन्हें देखते रहे। तब वे वैद्य ही कहने लगे- महाराज, हमारी कुशलता में किसी प्रकार का सन्देह न करें। हम श्रेष्ठ औषधियों के साथ अपने दीर्घकालीन अनुभव का प्रयोग कर आपको अवश्यमेव रोगमुक्त कर देंगे, ऐसा हमारा दृढ़ विश्वास है। आप आज्ञा दीजिए?

आप शरीर के रोगों की ही चिकित्सा जानते हैं या अन्य की भी?

हम वैद्य हैं, शरीर चिकित्सा, ही तो जानेंगे, अन्य क्या?

मुझे अपने शरीर के रोगों की कोई चिन्ता नहीं है। यदि आप कर्मरोगों की चिकित्सा जानते हो तो वह चिकित्सा मैं आपसे करवाऊँ?

कर्मरोग क्या होता है और उसकी कैसी चिकित्सा होती है, यह तो हम नहीं जानते, मुनिराज!

मुनि तनिक से मुस्कुराए, बोले कुछ नहीं। उन्हें अन्य रोगों के सिवाय भयंकर कुष्ठ रोग भी हो रहा था। सारे शरीर से पीब झर रहा था। उन्होंने अपनी अंगुली पर थोड़ा सा अपना ही थूक लिया और उसे दूसरे हाथ की एक अंगुली पर मल दिया। देखते ही देखते वह अंगुली स्वस्थ होकर कंचन वर्णी हो गई। तब वे बोले- शरीर के रोगों की चिकित्सा तो मेरे पास भी है किन्तु जब मैं आत्माभिमुखी बना हुआ हूँ तो शरीर के रोगों से मेरा क्या वास्ता? वह पीड़ा तो इस प्रकार समभाव से मैं सह लेता हूँ कि मुझे कुछ पता ही नहीं चलता। मेरी आत्मा और उसके मोक्ष के बीच में अब तो यह शरीर मात्र बाधा रूप है। यह बाधा हटेगी तभी मेरा आत्मिक सौन्दर्य पूर्ण रूप से विकसित होगा।

दोनों वैद्य रूपधारी देवों की मुखाकृति प्रभाहीन हो गई। उन्होंने यह कभी सोचा भी नहीं था कि शरीर के अनुपम सौन्दर्य का स्वामी आत्मा के भी अनुपम सौन्दर्य को प्राप्त कर लेगा। शरीर का सौन्दर्य को स्वमेव प्राप्त होता है किन्तु आत्मा का सौन्दर्य तो अति कठिन साधना द्वारा प्राप्त किया जाता है- इस दृष्टि से देवेन्द्र द्वारा प्रशंसित यह महात्मा कसौटी पर सौ टंच खरा उतरा है। दोनों देव भीतर ही भीतर घोर लज्जा का अनुभव कर

रहे थे। क्यों उन्होंने एक बार हार कर फिर दूसरी बार परीक्षा का दम्भ रचा?

कृत्रिम विक्रिया छोड़कर वे अपने वास्तविक रूप में आ गए। उन्होंने अपने मस्तक मुनि के चरणों में डाल दिए और बोले- हमने इन्द्र द्वारा आपकी सच्ची प्रशंसा को सहन न कर दो बार परीक्षा ली और दोनों बार हम हारे। आपका शारीरिक सौन्दर्य भी अनुपम था और उससे भी अधिक अनुपम है आपका आत्मिक सौन्दर्य।

स्त्रोत- उत्तराध्ययन सूत्र लक्ष्मीवल्लभ गणि रचित टीका।

सार- जो प्राप्त किया जा सकता है, उस आत्मिक सौन्दर्य की साधना सभी को करनी चाहिए।

❖ ❖ ❖

चर्मपट्ट से मुनि हत्या

अरे मेतार्य, अब तो सचेत बन। इस प्रकार संसार में कब तक भ्रम जंजाल तथा माया बंधन से बंधा रहेगा? इसमें मानव विभ्रमित होकर अपना सर्वस्व खो बैठता है। क्या तुम अपने पूर्व संकल्प एवं कर्त्तव्य को विस्मृत कर चुके हो? एक देव ने आकाशवाणी के रूप में मेतार्यकुमार के समक्ष जागृति का शंख फूंका।

आप कौन हैं? इस प्रकार की बात मुझे कहने में आपका अभिप्राय क्या है? मैं कुछ भी समझ नहीं पा रहा हूँ- मेतार्य ने चारों ओर देखकर और दृष्टि में किसी को न पाकर आश्चर्य के साथ पूछा।

तब एक दिव्यमूर्ति उसके समक्ष प्रकट हुई। उसके मुख से पुनः स्वर निकला- मेरे भाई मेतार्य लगता है, तुम सब कुछ भूल गए हो। अपनी प्रतिज्ञा को भी

भूल गए हो, किन्तु मैं नहीं भूला हूँ और इसी कारण तुम्हें जगाने के लिए आया हूँ।

हे दिव्य पुरुष, न तो मैंने आपको पहचाना है और न ही मुझे याद है कि मैंने आपके साथ कोई प्रतिज्ञा की थी। कृपया आप ही बताइए कि वस्तु स्थिति क्या है?

तो ध्यान से सुनो मेतार्य। हम दोनों पूर्वजन्म में मित्र थे। मैं राजपुत्र और तुम पुरोहित पुत्र। तब सन्त समागम पाकर हम दोनों ने दीक्षा ग्रहण की थी। मैंने तो विशुद्ध भाव से साधुधर्म का पालन किया, पर तुम साधुधर्म को कठिनता से आकुल-व्याकुल होकर सांसारिक सुखों की वांछा करने लगे। फिर भी वैकानिक देव बने।

एक बार तीर्थंकर देव की वाणी श्रवण कर उनसे पृच्छा की तब उन्होंने तुम्हारे लिए दुर्लभ बोधि होना कहा था। तब तुमने मुझे कहा था कि तुम मेरे सच्चे मित्र थे तो मुझे समय-समय पर बोध देते हुए प्रतिबोधित करना। मैं वही तुम्हारा मित्र देव हूँ।

तुम यह मत सोचो कि तुम श्रेष्ठिपुत्र हो, बहुत धन सम्पदा, भोग भोगने के साधन उपलब्ध हैं। पर यह यथार्थ नहीं है। यथार्थ पर्दे के पीछे है। जिसे तुम नहीं जानते मैं जानता हूँ। इसलिए उपयुक्त है कि तुम दीक्षित होकर आत्म-कल्याण में लगो।

तुम श्रेष्ठिपुत्र पुत्र नहीं हो, तुम एक मेहर चाण्डाल की पत्नी मेती की कुक्षि से जन्मे हो। चण्डालिनी सेठानी की कृपा पात्र थी। सेठानी जिस भी सन्तान को जन्म देती वह मर जाता। इससे सेठानी दु:खी रहती थी। उधर मेती गर्भवती हुई सेठानी भी। तब मेती ने कहा तुम सेठानी जी मेरे जो सन्तान होगी, मैं आपको सौंप दूंगी। इस प्रकार से तुम्हारा सेठ के यहाँ लालन-पालन हुआ व अभी भी तुम नाना सुविधाओं के साथ अपना जीवन व्यतीत कर रहे हो। किन्तु यह सांसारिक सुख हमारे लिए चरम लक्ष्य नहीं है। इसे त्यागकर संयम पथ पर आरूढ़ होना ही तुम्हारी प्रतिज्ञा है और यही प्रतिज्ञा तुम्हें याद दिलाने के लिये मैं तुम्हारे पास आया हूँ- देवता ने पूरा इतिहास मेतार्य को सुना दिया। लेकिन मेतार्य ने देव की बात पर ध्यान नहीं दिया।

वह मेतार्य के विवाह का शुभ दिन था। जहाँ सम्पत्ति का पार नहीं, वहाँ उत्सव की शोभा क्या वर्णनीय रहती है? वह श्रेष्ठिपुत्र का विवाह था, चारों ओर भारी धूमधाम मची हुई थी। सायंकाल जब वर के नगर भ्रमण का कार्यक्रम प्रारंभ हुआ तो उस जुलूस की छटा देखते ही बनती थी। वाद्य यन्त्र बज रहे थे,

नानाविध नृत्य हो रहे थे और मंगल गीत गाए जा रहे थे। वर का अश्व स्वर्णरचित आभूषणों से सज्जित था। थिरकता हुआ वह अश्व सबके बीच शान से चल रहा था।

तभी एक विचित्र घटना घटित हो गई। मैले कुचैले कपड़े पहने एक चाण्डालिनी ने अश्व की रास पकड़ ली और चिल्लाने लगी- यह सेठ कौन होता है इसका विवाह कराने वाला? यह तो मेरा पुत्र है- इसका विवाह मैं करूंगी।

सारे जुलूस में सन्नाटा छा गया। तो मेतार्य क्या श्रेष्ठिपुत्र नहीं, चाण्डाल पुत्र है? स्वयं मेतार्य कुछ भी बोल नहीं पा रहा था, क्योंकि वास्तविक तथ्य देव मुख से वह जान चुका था। भारी हंगामा मचा, जुलूस वहीं खत्म हो गया। जुलूस क्या, विवाह ही रुक गया- आठों सुकुमारियों के माता-पिताओं ने वह सम्बन्ध तोड़ दिया।

अरे मेतार्य, देख लिया संसार का नाटक? अब तो इससे निकल जा। मेतार्य देव को पहचान गया, गिड़गिड़ा कर बोला- क्या तुम मित्र का इस तरह अपमान करवाकर उसे संसार से निकालना चाहते हो? इस अपमान को मिटाकर मेरे लिए पहले से भी अधिक सम्मान बनाओ, फिर मैं निकल आऊंगा।

ठीक है मेतार्य यह भी कर दूंगा।

देव ने चाण्डाल को सम्राट श्रेणिक के यहाँ स्वर्ण भेंट देकर भेजा। उसे देख जब उससे पूछा गया कि यह किसलिए तब उसने राजकुमारी से अपने पुत्र का विवाह कराने का प्रस्ताव रखा। सम्राट कुछ कहे इससे पहले अभय कुमार ने विचार किया कि हो न हो इसमें कोई अन्तर रहस्य है। अभय ने कहा- तुम राजगृही नगर के चारों ओर सोने का कोट बनवाओ, वैभारगिरी पर पुल बंधवाओ, फिर उस पुल के नीचे गंगा, यमुना, सरस्वती तथा क्षीर सागर को प्रवाहित करवाओ। इतना होने पर तुम अपने पुत्र को उसमें नहलाओ, जिससे वह पवित्र बन जाए। जनता में जाति का अपवाद नहीं रहे। इतना ही नहीं उसके पश्चात् तुम्हारे पुत्र को सिंहासन पर बिठाकर छत्रादि धारण करवाओ। तब राजा तुम्हारे पुत्र का अपनी पुत्री से विवाह करवा देंगे।

देखते ही देखते सरा कार्य सम्पन्न हो गया।

अब मेतार्य महाराज श्रेणिक का जमाता हो गया। उसके सम्मान तथा उसके पिता की प्रतिष्ठा में चार चाँद लग गए।

मेतार्य, अब तो तुमने जो चाहा, वह हो गया न?

फिर विलम्ब क्यों? निकल पड़ो अब तो इस कुटिल संसार से। देव ने कहा।

देव तुम इस तरह मेरे पीछे क्यों पड़े हो? संसार में आया हूँ, इतना श्रेष्ठ संयोग भी तुमने करा दिया है, फिर तुम मुझे कोरा ही निकल जाने को क्यों कह रहे हो? प्राप्त कामभोगों का कुछ आनन्द तो ले लेने दो।

मेतार्य, तृष्णा का अन्त कभी नहीं आता और इच्छाएँ अनन्त होती हैं। इस तरह तो तुम जीवन भर भी इस दलदल से निकल नहीं पाओगे। तब तो टूट जाएगी प्रतिज्ञा और व्यर्थ हो जाएगा सारा प्रयास।

नहीं मेरे भाई, ऐसा नहीं होगा। बस मुझे केवल बारह वर्ष का समय दे दो, उसके पश्चात् मैं सहर्ष साधु धर्म स्वीकार कर लूंगा।

तुम चाहते हो तो यही सही किन्तु फिर कोई बहाना मैं नहीं सुनूंगा।

बारह वर्ष पश्चात् देव को इसका मेतार्य से कोई बहाना नहीं सुनना पड़ा। पर उसकी पत्नी कहने लगी- देव इनकी बात मान आपने उपकार किया। अब मेरी प्रथम व अंतिम मांग स्वीकार कर मुझे उपकृत करें। इतना कह उसने बारह वर्ष का और संसार सुख भोग लिया।

बारह और बारह इस प्रकार चौबीस वर्ष का संसार सुख भोगकर विरक्ति के परिणामों पूर्वक मेतार्य संसार को त्यागकर भगवान महावीर के चरणों में दीक्षित हो गया।

मुनि बन गए तो मुनि मेतार्य कठोरतम मुनि साधना में निमग्न भी हो गए- कठोर संयम और कठोर तप। वे लगातार मासखमण की तपस्या करने लगे- उनकी देह गल गई, पर आत्मा क्षमा, धैर्य आदि सद्‌गुणों से अतीव प्रकाशमान बन गई। वे जिन कल्पसाधना की उत्कृष्ट श्रेणियों में विचरण करने लगे।

यह वही राजगृही नगर है। जहाँ मेतार्य जन्मा था। प्रतिष्ठा की हानि हुई थी। प्रतिष्ठा पाई भी थी। भोग भोगे और श्रमण प्रव्रज्या स्वीकार की थी। आज फिर विचरण करते हुए उसी राजगृही नगर में वे पधारे। उनके मास-खमण का पारणा था। अपनी साधना की मस्ती में बिना भेदभाव के भिक्षार्थ परिभ्रमण करते हुए एक स्वर्णकार के यहाँ प्रवेश किया। मुनि को देख स्वर्णकार का दिल हर्ष से विभोर हो गया। सारा कार्य छोड़ उसने भक्तिपूर्वक मुनि को भिक्षा दी।

भिक्षा लेकर मुनि तो चले गए पर स्वर्णकार का

माथा ठनका। मुनि आए तब वह राजा श्रेणिक के आदेशानुसार स्वर्ण के जौ बना रहा था। मुनि को देखकर वह उन्हें यों ही छोड़कर आ गया था। पर वापिस गया तो स्वर्ण के जौ नदारद। विचार करने लगा वह कि उन्हें कौन ले जा सकता है। उसका चिंतन प्रवाहित हुआ। मुनि को छोड़ अन्य तो कोई घर में प्रविष्ट भी नहीं हुआ। तो क्या मुनि ही उन जौ के दानों को ले गए। ऐसा होना तो नहीं चाहिए, पर जौ के दाने अपने आप तो कहीं चले नहीं जाएंगे। धरती तो उन्हें निगल नहीं पाएगी? तब गये कहाँ? एक मात्र शंका का स्थान मुनि ही है।

वह दौड़कर मुनि को फिर से घर में लाया। पूछा मुनि यहाँ स्वर्ण जौ दाने पड़े थे वे कहाँ गए? मुनि ने यद्यपि स्वर्णकार के पक्षी को दाने चुगते देखा था तथापि यहाँ मौन रहना आवश्यक था। अन्यथा मुनि का कथन सुनते ही स्वर्णकार उस पक्षी को मार डालता। ऐसा विचार कर मुनि मौन रहे। स्वर्णकार ने मुनि से बार-बार पूछा पर अहिंसा के परिपालक, जीवों के वत्सल वे कैसे कहते कि इस पक्षी ने वे दाने चुगे हैं। मुनि मौन ही रहे।

स्वर्णकार तो उस मौन से इतना क्रुद्ध हो गया कि कर्त्तव्याकर्त्तव्य का भान ही भूल गया। चिल्लाकर

बोला- मुनि लगता है तुम सीधे-सीधे जौ का पता नहीं बताओगे- लातों के भूत बातों से नहीं मानते। कुछ कष्ट पाओगे तभी सच बोलोगे। क्यों ठीक है न?

वह भीतर से एक चर्मपट्ट (चमड़े का चौड़ा पट्टा) उठा लाया जो पानी में गलता हुआ पड़ा था। चमड़ा जब पानी में भीगता रहता है तो वह गलकर ढ़ीला होता रहता है और जब सूखता है तो वह सिकुड़ता रहता है। स्वर्णकार ने वह चर्मपट्ट कसकर मुनि के सिर पर बांध दिया और मुनि को धूप में खड़ा कर दिया। तब उस चमड़े को ज्यों-ज्यों धूप की गर्मी लगने लगी, वह चमड़ा बुरी तरह से सिकुड़ने लगा और उसमें कसने लगा मुनि मेतार्य का मस्तक।

मुनि का चिन्तन चलने लगा- यह स्वर्णकार जो कुछ कर रहा है इसमें इसका कोई दोष नहीं है। वह तो राजभय से संज्ञाशून्य हो गया है। वह जब मुझे पूछ रहा था तो सत्य कैसे बोलता? सत्य बोलने से तो हिंसा हो जाती और यदि एक प्राणी के प्राण बचाने के लिए मुझे अपने प्राण देने पड़ रहे हैं तो इसमें मुझे हर्षानुभव ही करना चाहिए। जीव रक्षा के लिए अपने प्राणों की बलि समीचीन है, श्रेयस्कर है। मेरा शरीर ही तो प्राण रहित

होगा। मेरी आत्मा तो अजर अमर है। वह तो अमृत है।

सूर्य ताप बढ़ता गया, चर्मपट्ट कसता गया और मस्तक भिंचता गया। उस समय मुनि को अपार वेदना होने लगी। वे परम क्षमा एवं धैर्य के साथ उसे सहते गए। जब वेदना अपने अन्तिम बिन्दु पर पहुँचने लगी तो मुनि ने जीवन की आशा और मरण भय मुक्त होने का सजीव प्रमाण प्रस्तुत कर दिया। उस अवस्था में कर्मों का क्षय कर सदा-सदा के लिए वे अमृत बन गए।

उधर एक लकड़हारा लकड़ियों का गट्ठर लेकर स्वर्णकार के घर आया। उसने लकड़ी का गट्ठर जोर से पटका। उसकी आवाज से पक्षी भयभीत हुआ। उसने विष्ठा की जिसमें सभी स्वर्ण जौ निकल गए।

उसने कांपते हाथों से उन जौं को समेटा और मुनि का चर्मपट्ट खोलने के लिये भागा। श्रेणिक के ये सभी जौ तो मिल गए किन्तु सर्वथा मिथ्या सन्देह करके उसने जिस जीवित जौ को छिन्न-भिन्न कर दिया है, क्या उसके लिए राजा उसे क्षमा कर देंगे? जल्दी से मुनि का चर्मपट्ट खोलकर उन्हें बचा ले, नहीं तो .....

किन्तु यह क्या? कहाँ चले गए मुनि? वहाँ तो उनका निर्जीव शरीर पड़ा हुआ था- चर्मपट्ट से कसे

हुए मस्तक के साथ। उसके हाथों निरपराध मुनि की हत्या हो गई थी।

राजा के भय से उसने भगवान महावीर की शरण स्वीकार करना उपयुक्त समझा। उसने भगवान से अपने अपराध की आलोचना कर स्वयं को आत्मभाव में स्थित किया।

स्त्रोत- उपदेश माला, आख्यान मणिकोश

सार- त्याग की कोई सीमा नहीं होती और न ही उसके आनन्द की।

❖ ❖ ❖